

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MAORI
Pracharini

1965

Patrika

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110704

28

45-955

गुरुकुल काँगड़ी

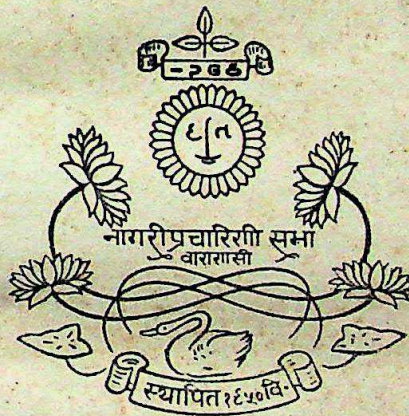
नागरीप्रचारिणी पत्रिका

[संवत् २०२२ वि०]

57
1965

वर्ष ७०

अंक १



संपादकमंडल

डा० संपूर्णानंद

डा० नगेंद्र

श्री करुणापति त्रिपाठी

—संयो०, संपादकमंडल

: श्री कमलापति त्रिपाठी

: श्री शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

: श्री सुधाकर पांडेय

—संयो०, पत्रिका एवं

सह संयो०, संपादकमंडल

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

पत्रिका के उद्देश्य

- १—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार ।
- २—हिंदी साहित्य के विविध अंगों का विवेचन ।
- ३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान ।
- ४—प्राचीन अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन ।

सूचना

- १—प्रति वर्ष, सौर वैशाख से चैत्र तक पत्रिका के चार अंक प्रकाशित होते हैं ।
- २—पत्रिका में उपर्युक्त उद्देश्यों के अंतर्गत सभी विषयों पर सप्रमाण और सुविचारित लेख प्रकाशित होते हैं ।
- ३—पत्रिका के लिये प्राप्त लेखों की प्राप्तिस्वीकृति शीघ्र की जाती है और उनकी प्रकाशन संबंधी सूचना एक मास में भेजी जाती है ।
- ४—लेखों की पांडुलिपि कागज के एक ओर लिखी हुई, स्पष्ट एवं पूर्ण होनी चाहिए । लेख में जिन ग्रंथादि का उपयोग या उल्लेख किया गया है, उनका संस्करण और पृष्ठादि सहित स्पष्ट निर्देश होना चाहिए ।
- ५—पत्रिका में समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है । उनकी प्राप्तिस्वीकृति पत्रिका में यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होती है । परंतु संभव है उन सभी की समीक्षाएँ प्रकाश्य न हों ।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी



110704

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५०
संवत् २०२२
अंक १

संपादकमंडल

श्री डा० संपूर्णानंद
श्री कमलापति त्रिपाठी
श्री डा० नगेंद्र
श्री शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'
श्री करुणापति त्रिपाठी
—संयोजक, संपादकमंडल
श्री सुधाकर पांडेय
—संयोजक पत्रिका एवं
सहसंयोजक, संपादकमंडल

वार्षिक मू० १०.००
हस अंक का २.५०

काशी नगरी प्रचारिणी सभा

विषय सूचि

१. हिंदी नाट्यसाहित्य में विवृत महाराष्ट्र का इतिहास
— श्री प्रभुदास रा० भुपटकर... १
२. 'पृथ्वी राज रासउ' के कुछ शब्दार्थों पर पुनर्विचार
— श्री शंभुसिंह मनोहर... २३
३. महाकवि भूषण कालनिर्णय—डॉ० काशी नाथ केलकर... ३६
४. 'भरत विलाप' का रचयिता—श्री सियाराम तिवारी... ५२
५. वर्णरत्नाकर की श्रेणी के पूर्ववर्ती ग्रंथ—डा० भुवनेश्वर प्रसाद गुप्तमैता ... ५७
६. प्रेमरत्न और उसकी रचयित्री—डा० पूर्णमासी राव... ७२
७. हिंदी और मलयालम में समान पुर्तगाली शब्द
— श्री वेललायणि अर्जुनन् ... ८६

पौराणिकी

आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी के पत्रसंग्रह से ... १०६

विमर्श

श्रौचित्य विमर्श—श्री शिवकुमार मिश्र... १२८

एक प्राचीन गीतकार : राम सखे—श्री गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर'... १३०

चयन ... १३४

निर्देश ... १३६

समीक्षा

— श्री सुधाकर पांडेय, श्री ब्रजमोहन लाल, श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ... १३७

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ७०]

वैशाख, संवत् २०२२

[अंक १]

हिंदी नाट्यसाहित्य में विवृत महाराष्ट्र का इतिहास

[प्रभुदास रा० भुपटकर]

हिंदी नाट्यसाहित्य में महाराष्ट्र के इतिहास से संबंध निम्नलिखित नाटक उपलब्ध होते हैं :

क. छत्रपति शिवाजी महाराज

१. सरजा शिवाजी—श्री गोपालचंद्र देव
२. छत्रपति शिवाजी—श्री० सुवर्णसिंह वर्मा 'आनंद'
३. सिंहगढ़ विजय—आ० ब्रजनाथ राय
४. शिवाजी—रावराजा डा० श्यामविहारी मिश्र और शुकदेवविहारी मिश्र
५. वीरार्य शिवाजी—शंकरशरण गुप्त
६. शिवा साधना—हरिकृष्ण प्रेमी
७. अफजल वध—मोहनलाल महतो 'वियोगी'
८. छत्रपति शिवाजी—पं० धर्मदत्त शर्मा 'आजाद'
९. छत्रपति शिवाजी नाटक—पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली'
१०. नाटक वीर शिवाजी सरहठा—न्यादरसिंह 'वेचैन'
११. रघुनाथराव—साहू मदनमोहन
१२. दलजीतसिंह—कृष्णलाल वर्मा

ख. बाजीराव प्रथम—मल्हारराव होलकर

१. हर हर महादेव—पं० गोविंदशास्त्री दुगवेकर

ग.

१. नाना फडणवीस—श्री० परिपूर्णानंद वर्मा

२. नाना फडनवीस—डा० रामकुमार वर्मा

घ. खर्डी की लड़ाई

१. शारदीया—जगदीशचंद्र माथुर

च. १८५७ का स्वातंत्र्य समर**अ. भौंसी की रानी**

१. भौंसी पतन या भौंसी की रानी

२. महारानी लक्ष्मीबाई—कंचनलता सच्चरवाळ

३. भौंसी की रानी—वृंदावनलाल वर्मा

४. भौंसी की रानी—राजेश्वर गुरु

५. भौंसी की रानी—सत्यनारायण 'सत्य'

६. भौंसी की रानी अर्थात् महारानी लक्ष्मीबाई—न्यादरसिंह 'वेचैन'

ब. सेनापति तात्या टोपे—पातीराम भट्ट

छत्रपति श्री शिवाजी महाराज

दक्षिण में हिंदवी स्वराज्य के संस्थापक गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक श्री शिवाजी महाराज के जीवन को लेकर लिखे गए निम्नलिखित नाटक हिंदी में उपलब्ध होते हैं :

१. सरजा शिवाजी—गोपालचंद्र देव

२. छत्रपति शिवाजी—सुवर्णसिंह शर्मा 'आनंद'

३. सिंहगढ़ विजय—आ० वैजनाथ राय

४. शिवाजी—रावराजा डा० श्यामविहारी मिश्र और शुकदेव मिश्र

५. वीरार्य शिवाजी—शंकरशरण गुप्त

६. शिवासाधना—हरिकृष्ण प्रेमी

७. अफजल वध मोहनलाल महतो 'वियोगी'

८. छत्रपति शिवाजी—पं० धर्मदत्त शर्मा 'आजाद'

९. छत्रपति शिवाजी नाटक पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली'

१०. नाटक वीर शिवाजी मरहटा—न्यादरसिंह 'वेचैन'

हिंदी नाट्यसाहित्य में विवृत महाराष्ट्र का इतिहास

३

११. रघुनाथराव—साहू मदनमोहन

१२. दलजीतसिंह—कृष्णलाल वर्मा

इन नाटकों में केवल निम्नलिखित नाटक साहित्यिक शैली के हैं—

१. शिवाजी (मिश्रब्रंधु), २. अफजल वध (मोहनलाल महतो 'वियोगी')
३. शिवासाधना (हरिकृष्ण 'प्रेमी'), ४. छत्रपति शिवाजी नाटक (पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली') ।

शेष नाटक थिएट्रिकल शैली के हैं । इन सभी नाटकों में शिवाजी के जीवन की निम्नलिखित घटनाएँ प्रधानतया अंकित हैं :

१. दादाजी कोंडदेव तथा माता जिजाबाई से शिवाजी का शिक्षा पाना ।
२. बीजापुर दरबार के मातहत रहने से शिवाजी का इंकार ।
३. शिवाजी के निमित्त आदिलशाह का शहाजी भोसले को सताना । शिवाजी को उचित रास्ते पर लाने के लिये शहाजी को एक मास की अवधि देकर कैद में रखना, अन्यथा फाँसी की धमकी । शाहजहाँ की सहानुभूति प्राप्त करके शिवाजी का अपने पिता जी को मुक्त कराना ।
४. शिवाजी को जीवित या मृत पकड़ने के लिये अफजल खॉ का आगमन । अफजल खॉ का कपट—शिवाजी द्वारा अफजल खॉ का वध ।
५. औरंगजेब के मामा शाइस्ता खॉ का शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिये दक्षिण में आगमन—पूना में शिवाजी के महल में निवास । वारात के बहाने शिवाजी का शाइस्ता खॉ पर आक्रमण । शाइस्ता खॉ की उँगलियों का कट जाना ।
६. दिल्ली में औरंगजेब के राज्यारोहण करने पर यशवंतसिंह और दिलेर खॉ का शिवाजी को वश में करने के लिये आना । मिर्जाराजे जयसिंह की प्रेरणा से शिवाजी का दिल्ली जाना । दरबार में औरंगजेब द्वारा अपमानित होना और धोखे से कैद में पड़ना । बीमारी का बहाना—मिठाई के टोकरो में छिपकर कैद से छुटकारा ।
७. मुगलों के अधिकार में रहनेवाले कोंडाणा को शिवाजी द्वारा अधिकृत कर लेना । इस प्रयत्न में शिवाजी के दाहिने हाथ तानाजी मालुसरे का बलिदान ।
८. आबाजी सोनदेव द्वारा लूट में लाई गई कल्याण के सूवेदार की पुत्रवधू को शिवाजी का संमान के साथ लौटाना ।
९. शिवाजी के स्वराज्य-संस्थापन-कार्य में समर्थ श्री रामदास स्वामी का सहयोग । समर्थ रामदास स्वामी के श्रीचरणों में शिवाजी महाराज का राज्य समर्पण । भगवा भंडा रामदास स्वामी के स्वामित्व की निशानी ।

१०. शिवाजी का राज्याभिषेक ।

११. शिवाजी की मृत्यु ।

कुछ अपवादात्मक नाटकों को छोड़कर (सिंहगढ़ विजय, अफजल वध) शेष नाटकों में शिवाजी की संपूर्ण जीवनी अंकित करने का प्रयत्न हुआ है। स्वाभाविक कथावस्तु के विस्तार से दृश्यसंख्या बढ़ गई है। संख्या बढ़ने से दृश्य छोटे छोटे हो गए हैं, परिणामतः नाटक का प्रभाव बिखरा बिखरा सा रह गया है। विस्तार के अलावा संपूर्ण जीवनी अंकित करते समय भी नाटककार यदि प्रत्यक्ष कथावस्तु और सूचित कथावस्तु के विवेक का निर्वाह कर पाते तो नाटक अधिक सुगठित होता। प्रभाव में भी परिणामक्षमता आती। पर यह भी नहीं हो पाया है।

साहित्यिक नाटकों को छोड़कर शेष नाटकों में ऐतिहासिकता के प्रति सजगता का अभाव ही उपलब्ध होता है। (उदा० तानाजी के पुत्र का नाम, शिवाजी की मुक्ति के प्रयत्नों में संभाजी का कर्तृत्व, सिंहगढ़ विजय करने पर तानाजी का जीवित रहना आदि)

कथा में प्रणय की योजना भी नाटकों में (उदा० छत्रपति शिवाजी-डा० मुवर्ण सिंह वर्मा 'आनंद', छत्रपति शिवाजी-पं० धर्मदत्त शर्मा 'आजाद', दलजीत सिंह-कृष्णलाल वर्मा, रघुनाथ राव-साहू मदनमोहन) आरोपित है। इन सब में प्रेमी युगुल की प्रणयकहानी ऊपर से जोड़ी गई है। ऐसे नाटकों में शिवाजी की कहानी पिछड़ सी गई है।

संवर्ष भावना : इस विषय से संबद्ध सभी नाटक घटनाप्रधान हैं। इनमें वर्णित संवर्ष भी बाहरी हैं। स्वातंत्र्यप्राप्ति के प्रयत्नों में मुसलमान बादशाहों की रुकावटों, हिंदुओं पर किए गए अत्याचारों और अन्यायों के विरुद्ध शिवाजी का संग्राम यही इन नाटकों में प्राप्त होनेवाले संवर्ष का निचोड़ है।

उक्त तथ्य के लिये केवल एक नाटक अपवाद है, और वह है, मोहनलाल महतो 'वियोगी' का 'अफजल वध'। शिवाजी को झलकपट से मारने के घात को लेकर अफजल खाँ के मन में उत्पन्न कायरता के निमित्त मचा हुआ अंतर्द्वंद्व अत्युत्कृष्ट रीति से अंकित हुआ है। 'सरजा शिवाजी' (गोपालचंद्र देव) में दादाजी कोंडदेव की दुविधा के चित्रण में क्षीण आंतरिक संवर्ष की झलक मिलती है।

चरित्रचित्रण : उक्त नाटकों में आनेवाले चरित्रों में ऐतिहासिक तथा अनैतिहासिक चरित्रों का मेल है। शिवाजी, शहाजी, जिजाबाई, सई बाई, संभाजी, दादाजी कोंडदेव, तानाजी, येसा जी कंक, औरंगजेब, शाहजहाँ, शायस्ता खाँ, दिलेरखाँ, आदिलशाह, अफजलखाँ आदि ऐतिहासिक चरित्रों का समावेश

इन नाटकों में हुआ है। इन ऐतिहासिक चरित्रों के केवल लौकिक जीवन को ही प्रकाश में लाने का अवसर मिला है। निजी या अंतरंग जीवन को नहीं। सभी चरित्र स्थिर हैं। विकसनशील चरित्रों का नितांत अभाव है। सभी नाटकों में विभिन्न ऐतिहासिक चरित्रों के उन्हीं चरित्रगुणों का उल्लेख मिलता है, जो इतिहास तथा परंपरा से हमें प्राप्त हैं। कुछ नाटकों में शिवाजी को ईश्वरीय अवतार के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न हुआ है। फिर भी शिवाजी के जो कार्यकलाप वर्णित हैं, उनमें किसी प्रकार की अलौकिकता नहीं प्राप्त होती।

कथोपकथन : अधिकांश नाटकों में कथोपकथन रस्मी हैं। प्रयुक्त भाषा वर्तमान खड़ी बोली है। कुछ नाटकों के मुसलमान पात्र उर्दू बोलते हैं। शेष चरित्र हिंदी उर्दू मिली जुली भाषा का प्रयोग करते हैं। थिएट्रिकल नाटकों की भाषा लिचड़ी, पर्याप्त मात्रा में अशुद्ध है। लगभग सभी नाटकों में गीत पाए जाते हैं। ये गीत पद्यमात्र हैं। इनमें काव्यात्मकता का अभाव है। धुंधली सी काव्यात्मकता के दर्शन साहित्यिक नाटकों में उपलब्ध होते हैं।

थिएट्रिकल नाटकों में उर्दू शैली के शेर, तुकुवंदी, चुटकुले आदि प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। थिएट्रिकल नाटकों में संवत् ऐतिहासिक काल के विपरीत अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है, जैसे नोटिस, लाइन, ड्रेस, प्रोपोजेंडा, रिपोर्ट, नंबर, अटेंशन, मोशन आदि। (वीर शिवाजी मरहटा)।

वातावरण—स्थल तथा काल की नाममात्र की सूचना के अलावा वातावरणनिर्माण का कोई विशेष उल्लेखनीय प्रयत्न किसी नाटक में नहीं हुआ है। इसका केवल एक अपवाद है वेणीमाधव त्रिपाठी 'श्रीमाली' का 'छत्रपति शिवाजी या समर्थ रामदास नाटक'। इस नाटक के प्रत्येक दृश्य का स्थल, काल, दृश्यपीठ (सेटिंग), चरित्रों की वेशभूषा, शस्त्रसज्जा तथा प्रत्येक दृश्य के लिये अनिवार्य रंगमंचीय (स्टेज) तथा वैयक्तिक (परसनल) सामग्री (प्रापरटी) का व्योरा विस्तृत टिप्पणियों द्वारा दिया गया है।

शैली—लगभग सभी नाटकों में आरंभ में संस्कृत नाटकों की शैली का प्रयोग किया गया है। आरंभ में मंगलाचरण है। फिर सूत्रधार और नटी का वार्तालाप उपलब्ध होता है जिसमें प्रचलित रंगमंच एवं नाटक की आलोचना होती है और प्रस्तुत नाटक के अभिनय के औचित्य की मीमांसा, नाट्यविषय तथा नाटककार का परिचय प्राप्त होता है। शिवाजी को अवतार के रूप में उपस्थित करनेवाले नाटकों में (वीर शिवाजी मरहटा) एक और दृश्य मिलता है, जिसमें भारतमाता, धर्म, सत्य आदि विष्णु के पास पहुँचकर 'त्राहि त्राहि' की पुकार

मचाते हैं। इस प्रारंभिक दृश्य के पश्चात् मुख्य नाटक शेक्सपियर या पश्चिमी शैली के आधार पर लिखे गए मिलते हैं।

एक अंक में अनेक दृश्य बदलते जाते हैं। हत्या, मारकाट, युद्ध जैसे वर्ज्य दृश्यों का भी समावेश होता है। एक बात अवश्य है कि लगभग सभी नाटकों को नुखांत बनाने का प्रयत्न हुआ है। फिर भी संस्कृत शैली के अनुरूप अंत में 'भरतवाक्य' नहीं मिलता। कथानिवेदन प्रणाली की दृष्टि से इन नाटकों में कालक्रमानुसारी, उद्घाटन शैली अपनाई गई है।

उद्देश्य — सभी नाटक बोधप्रद (डिडैक्टिक) हैं। इसके अपवाद हैं— थिएट्रिकल शैली के अनुसार लिखे गए नाटक। इन नाटकों का उद्देश्य अवश्य सस्ता मनोरंजन है। कुतूहलवर्णन के लिये अद्भुत का पोषण 'ट्रिक' तथा 'ट्रांसफर सीन' के जरिए हुआ है। शिवाजी की स्वातंत्र्यलिप्सा, युवक साथियों का संगठन, स्त्रियों के संबंध में उदात्त नैतिकता, हिंदू मुस्लिम ऐक्यभाव का संवर्धन आदि वे पक्ष हैं जिनका अनुकरण नाटककार वर्तमान जनता द्वारा अभीष्ट मानते हैं।

रंगमंचीय अनुकूलता — साहित्यिक नाटकों में 'अफजल बघ', 'सिंहगढ़ विजय' आदि कुछ नाटकों को छोड़ शेष किसी नाटक को रंगमंचीय अनुकूलता प्राप्त नहीं है। थिएट्रिकल नाटकों की रंगमंचीय अनुकूलता भी अधूरे स्तर की है। संभावना (प्रावेबिलिटी) का विचार इन थिएट्रिकल नाटकों को छू तक नहीं गया है। साहित्यिक नाटकों में एक एक करके नायक से संबद्ध घटनाएँ अन्यान्य पात्रों के कथोपकथन द्वारा निरूपित होती हैं। इससे अधिक नाट्यात्मकता किसी नाटक में उपलब्ध नहीं है। इन्हें नाटकों के वेश में प्रस्तुत संभाषण कहना ही अधिक उपयुक्त एवं उचित होगा। उपलब्ध रंगमंच की दृष्टि से न दृश्यों का क्रम रखा गया है, न संभावना का ध्यान। अंकों की समाप्ति भी एकाएक हो जाती है, उदाहरणार्थ 'सरजा शिवाजी' अंक ५१४ तथा अंक ७१२।

हास्य — अधिकांश नाटकों में हास्य का अवलंबन नहीं किया गया है। इतिहास की गंभीरता का यथोचित निर्वाह करते हुए हास्य का उपयुक्त संयोजन केवल तीन नाटकों में प्राप्त होता है। श्री वेण्णिराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' के नाटक 'छत्रपति शिवाजी या समर्थ रामदास' में कुंडल तथा उनके शिष्यों की अवतारणा हास्य के लिये ही की गई है। इनके द्वारा टोंगी संतों के ढकोसले का पर्दाफाश करने का सफल प्रयत्न नाटककार ने किया है। फिर भी, इतना तो निश्चित है कि इस हास्यकथा के केंद्रीय पात्र का मूल कथावस्तु से कोई संबंध नहीं है।

हिंदी नाट्यसाहित्य में विवृत महाराष्ट्र का इतिहास

७

पं० धर्मदत्त शर्मा 'आजाद' के नाटक 'क्षत्रपति शिवाजी' में वर्तमान काल के लोलुप व्यापारियों की अधिकारलिप्सा और उसकी प्राप्ति के पश्चात् मचाए गए ऊधम हास्य का निर्माण करते हैं। हास्यकथा के वर्तमान कालीन होने से अतीत युग के प्रत्यय में व्यत्यय आ जाता है।

श्री न्यादरसिंह 'वेचैन' देहली के नाटक 'वीर मरहटा शिवाजी' में एक ही दृश्य हास्य का है, जो नाटक के अंतिम हिस्से में आता है। नाटककार को संपूर्ण नाटक का अंत होते होते यह हास्य दृश्य रखने की दुर्बुद्धि क्यों हुई, पता नहीं चलता। इस दृश्य में चार हिजड़े हैं, इनमें से एक 'जोकर' कहलाता है। दृश्य हीन अभिरुचि का अवश्य है, बीभत्स भले ही न हो।

हर हर महादेव - पं० गोविंदशास्त्री दुग्गवेकर। नाटक महाराष्ट्र प्रदेश से नहीं, बल्कि महाराष्ट्र व्यक्तियों से संबंध रखनेवाला है। इस नाटक की दूसरी विशेषता यह है कि नाटक हिंदी भाषा का होते हुए भी इसके लेखक हैं हिंदीतर भाषी पं० गोविंदशास्त्री दुग्गवेकर। इतना अवश्य है कि श्री० दुग्गवेकर महाराष्ट्रीय होते हुए भी बनारस के स्थायी निवासी थे।

नाटक उपदेशात्मक है। प्रधान उपदेश नाटक के नायक मल्हारराव होलकर के मुख से सूचित हुआ है। 'राजपूत तथा अन्य भाइयों से जो भूलें हुईं उन्हें सुधारकर एक संगठित हिंदू राष्ट्र का निर्माण करने का पवित्र यज्ञकर्मण मराठों ने अपने हाथ बाँधा है और इसी कार्य के लिये हमारे उदार सरकार बाजीराव इस प्रांत में संचार कर रहे हैं।' --पृ० ५

मल्हारराव के आरंभिक वक्तव्यों में एक दुविधा सूचित होती है। मल्हारराव का वक्तव्य यों है -- 'जो राजभक्त हो क्या उसे अपने धर्म पर तिलांजलि देनी ही होगी।' --पृ० ५

..... 'वे यह नहीं समझते कि धर्म की रक्षा से ही भारत की रक्षा हो सकती है।' मतलब है कि मल्हारराव के मत में राष्ट्र और धर्म के द्वंद्व में धर्म को प्रधानता मिलनी चाहिए। दुर्भाग्य है कि नाटक की आगे की घटनाएँ इस दुविधा को प्रखर रूप में सामने नहीं लाती। नाटक की कथा में न मल्हारराव के कर्तृत्व के दर्शन होते हैं, न बाजीराव के कर्तृत्व के। दोनों का नाटक में अस्तित्व परोक्ष एवं अप्रधान है।

नाटक की कथा जयपुर नरेश की बहन लीलावती के बहादुरशाह से आयोजित विवाह से संबंध रखती है। लेकिन यह व्याह राजनीतिक व्याह नहीं है। क्योंकि लीलावती स्वयं बहादुरशाह से प्रेम करती है। बूंदी के राजा बुधसिंह लीलावती से व्याह करते हैं। फिर उनपर तथा उनके संबंधियों पर अन्य

स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा जो अत्याचार होते हैं उसका वर्णन नाटक में मिलता है। अंत में लीलावती मल्हारराव होलकर के आश्रय में पहुँचती हैं। बुधसिंह का पुत्र भी मल्हारराव की शरण में आता है। मल्हारराव ईश्वरसिंह को जयपुर के राज्य-सिंहासन पर बैठाते हैं।

नाटक की रचना करते समय नाटककार ने अद्भुत का निर्माण ही अपना एकमात्र ध्येय रखा है। चरित्रों में आनेवाले परिवर्तन एवं घटनाओं की अवतारणा केवल अद्भुत के निर्वाह के लिये होती है। चरित्रपरिवर्तन एवं घटनाओं के संबंधनिर्वाह में किसी प्रकार की युक्ति या संगति काम नहीं करती।

कुछ प्रसंग एवं कुछ चरित्र अनुकरणात्मक हैं। मल्हारराव होलकर के सिपाहियों का लूट में एक यवन स्त्री को लाना और बाजीराव का उसे माता संवोधन कर संमान के साथ लौटाना, शिवाजी के जीवन के प्रसंग की आवृत्ति है। बाजीराव के संबंध में इस प्रकार की किसी कहानी का इतिहास में अनुमोदन नहीं प्राप्त होता है।

हास्य के लिये एक लोभी कायर राजा सावाराम के चरित्र का आयोजन नाटककार ने किया है। यह चरित्र श्री० कृ० प्र० खाडिलकर के 'मानापमान' नाटक के 'लक्ष्मीधर' की हूबहू प्रतिकृति है।

नाटक का आरंभ संस्कृत शैली से हुआ है। आरंभ में नांदी, मंगलाचरण, फिर सूत्रधार तथा नटी का दृश्य, जो नाटक के विषय तथा कथा की ओर संकेत करता है।

नाटक अधिकांश मात्रा में कल्पनाधिष्ठित है। कुछ ऐतिहासिक नेताओं के नाम अवश्य नाटक में आए हैं। शेष घटनाएँ तथा चरित्र संपूर्णतया कल्पना-प्रसूत अतः अनैतिहासिक हैं।

नाना फडनवीस

मराठी के इतिहास में साढ़े तीन सयाने प्रसिद्ध हैं। जिनमें आधा सयाना बनने का गौरव पेशवाओं के परामर्शदाता नाना फडनवीस को है। इस नाना फडनवीस के अलौकिक व्यक्तित्व की ओर हिंदी के दो अग्रगण्य नाटककार आकृष्ट हुए हैं। एक हैं श्री परिपूर्णानंद वर्मा और दूसरे हैं डा० रामकुमारवर्मा।

नाना फडनवीस की गणना मराठी इतिहास में साढ़े तीन सयानों में क्यों न हुई हो, श्री परिपूर्णानंद वर्मा भारत के कूटनीतिज्ञ पुरुषों की श्रेणी में श्रीकृष्ण, आर्य चाणक्य के बाद तीसरा स्थान नाना फडनवीस को देते हैं। आ० नरेंद्रदेव ने इस नाटक की जो भूमिका लिखी है, उसमें इस बात की ओर संकेत

हिंदी नाट्यसाहित्य में महाराष्ट्र का इतिहास

९

किया है कि नाना फडनवीस के इतिहास का हिंदी में अभाव है। “परिपूर्णानंद जी ने इस कमी को पूरा कर हिंदी साहित्य का उपकार किया है।”

श्री परिपूर्णानंद सर्वप्रथम इतिहास के अनुसंधाता हैं, बाद में ललित साहित्यकार। इस दृष्टि से ऐतिहासिक नाटक के संबंध में आपका वक्तव्य भी द्रष्टव्य है।

“हिंदी तथा बंगला में ऐतिहासिक नाटक भरे पड़े हैं। पर इनकी प्रणाली मुझे पसंद न आई। यद्यपि स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद ऐसे कलाकार ने इतिहास का पर्याप्त ध्यान रखते हुए नाटक लिखे हैं, पर अधिकांश में इतिहास की एक घटना पर पूरा ही नाटक बन जाता है और उसमें रुपये में एक पैसा बराबर इतिहास रहता है। शेष मनगढ़ंत होती है। मैंने अपने इस प्रयास में कमसहित तीस पैंतीस वर्ष की घटनाओं का सार दिया है और समूचे नाटक द्वारा एक पूरे युग का इतिहास लिख दिया है।” (पृ० २, निवेदन)। पारमार्थिक दृष्टि से (आन एन ऐन्सोल्यूट लेवल) इस दृष्टिकोण से सतभेद रखते हुए नाटककार के लिये किस मात्रा में इतिहास भाव सजग हो, इसके संकेत के उपलक्ष्य में मैं लेखक महोदय का अभिनंदन करता हूँ। और इसीलिये मैं श्री परिपूर्णानंद वर्मा की कृति को ऐतिहासिक नाटक न मानते हुए नाटकरूप इतिहास मानना अधिक पसंद करता हूँ। और वही उसका स्वरूप भी है क्योंकि लेखक ने यह नाटककृति दो विभागों में बाँटी है। पहला भाग है जीवनी खंड, और दूसरा भाग है नाटक खंड।

नाटककार ने अपने निवेदन में यह दावा किया है—“मैंने नाटक को खेलने तथा पढ़ने दोनों योग्य बनाया है।” इस दावे की सफल चरितार्थता में संदेह है। परदे तथा स्टेज की सेटिंग्स को सहजसाध्य बनाने से ही कोई नाटक अभिनेय नहीं बनता। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जिन नाटकों के अभिनय होते हैं, उन्हें भी हर बार अभिनेय नहीं कहा जा सकता। अभिनेयात्मकता का प्राण है—कथा की दृश्यात्मक रोचकता। और खेद है कि श्री परिपूर्णानंद इस अंग में असफल रहे हैं।

क्रमागत साररूप इतिहास देने के प्रयत्न में नाटक घटनाप्रधान हो गया है। नाटक ने तथ्यात्मक (डाक्युमेंटरी) नाटक जैसा रूप ग्रहण किया है। अतः नाना फडनवीस के व्यक्तित्व का उद्घाटन पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाया है। इस संबंध में यहाँ इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि नाना फडनवीस के जिस व्यक्तित्व का उद्घाटन नाटककार को अभिप्रेत है वह नाना फडनवीस का सार्वजनिक, राजनैतिक व्यक्तित्व है। उस व्यक्तित्व का क्षेत्र भी नाटककार ने पर्याप्त विस्तृत रखा है। नाना फडनवीस के इस राजनैतिक व्यक्तित्व की महत्ता की ओर संकेत करते हुए आ० नरेंद्र देव ने भूमिका में लिखा है—

२ (७०-१)

“इस समय मराठा साम्राज्य में नाना फडनवीस ऐसा दूरदर्शी और निपुण राजनीतिज्ञ मौजूद था। मराठा राज्य में ही उससे कई लोग स्पर्धा करते थे और उसके विनाश की सदा चेष्टा किया करते थे। पर, वह अपनी कार्यकुशलता से सदा अपनी रक्षा में समर्थ रहा और शत्रुओं के षडयंत्र को सदा विफल करता रहा। गृहकलह को शांत करने, कम से कम उसको काबू में रखने का वह सदा प्रयत्न करता था। नाना कंपनी का शत्रु था। उसका समकालीन वीर हैदरअली भी कंपनी का शत्रु था। इन दोनों ने अंग्रेजों के विरुद्ध एक गुट बनाना चाहा और निजाम को भी उसमें शामिल किया। किंतु, गायकवाड और भोसले अलग रहे। सिंधिया की अपनी अलग नीति थी। वह अपना प्रभाव बढ़ाने तथा प्रभुत्व स्थापित करने के लिये मध्यस्थ होकर अंग्रेजों से संधि कराना चाहते थे। इन सरदारों के आगे नाना फडनवीस की भी कुछ न चली।” (पृ० ३, निवेदन)।

नाटक मराठी क्षेत्र से संबद्ध है। अतः नाटककार ने संबोधन अभिवादन आदि के लिये मराठी शब्दों का प्रयोग किया है। मैं इस प्रवृत्ति का हार्दिक स्वागत करता हूँ। फिर भी अपरिचय के कारण कुछ गलत संबोधनों का प्रयोग नाटक में हुआ है। जैसे—चुलता, भावजय, सासर, जवाई, वहिनी आदि।

श्री परिपूर्णानंद वर्मा की तरह डा० रामकुमार वर्मा के नाना फडनवीस के व्यक्तित्व को लेकर लिखे गए नाटक का शीर्षक भी व्यक्तिवाचक तथा चरित्रप्रधान है। लेकिन शीर्षक के साथ नाटक की व्याख्या करनेवाली दो पंक्तियाँ डा० रामकुमार वर्मा ने जोड़ी हैं। वे इस प्रकार हैं—

“तीन अंकों में भारतीय संस्कृति एवं राजनीति का एक चिरस्मरणीय चित्र।”

इस स्पष्टीकरण से नाटक के स्वरूप का बोध होता है। नाटक का शीर्षक भले ही व्यक्तिवाचक हो, नाटक की कथा व्यक्तित्व उद्घाटन करनेवाली प्रधानतया नहीं है। अतः इसे हम जीवनी प्रधान ऐतिहासिक नाटक (हिस्टोरिकल बायग्राफी-कल प्ले) नहीं कर सकते।

डा० वर्मा नाना फडनवीस को भारतीय इतिहास का एक स्मरणीय नाम मानते हैं। उनकी मान्यता है कि “वे ही महाराष्ट्र के अप्रतिम राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने हिंदु पातशाही की दुंदुभि बजाकर अंग्रेज, फ्रांसीसी, मुगल, हैदर, टीपू-सुलतान और निजाम की समस्त कूटनीति और षडयंत्रों को नष्ट कर राष्ट्रीयता की नींव मजबूत की।”

नाटक के तीन अंक हैं। पहले अंक में नाना फडनवीस का राजनीतिक क्षेत्र में उदय तथा अगले दो अंकों में पेशवापद को लेकर पेशवा - परिवार में

मचे हुए पारिवारिक कलह का निपटारा नाना फडनवीस ने किस प्रकार किया, इसका वर्णन है। नाट्यशिल्प की दृष्टि से पहला अंक नाना फडनवीस के कर्तृत्व से उतना संबद्ध नहीं है। अतः उद्घाटन की दृष्टि से प्रदीर्घ सा लगता है। उसकी तुलना में शेष दो अंक अति सुगठित हैं। दूसरे अंक में ज्येष्ठ माधव राव के समय राघोबा (रघुनाथराव पेशवा) तथा उनकी पत्नी आनंदीबाई के स्वार्थ-लिप्सावश किए गए विद्रोही कृत्यों को नाना फडनवीस ने किस प्रकार निष्प्रभ कर दिया, इसका संकेत मिलता है। इस अंक में भी जिस व्यक्ति के कर्तृत्वका अधिकांश में वर्णन हुआ है, वह व्यक्ति है, ज्येष्ठ माधवराव पेशवा। हाँ, यह सत्य है कि परोक्ष में इस सारे कर्तृत्व का श्रेय नाना फडनवीस के सही परामर्श-निर्देशन को है।

प्रथम दो अंकों की कथावस्तु अधिकांश में निवेदन स्वरूप की है। यह निवेदन अत्यंत सुचारु रूप से हुआ है इसमें कोई संदेह नहीं। फिर भी यह स्वीकार ही करना पड़ेगा कि निवेदन स्वरूप ही होने से इन दोनों अंकों की गति मंथर स्वरूप हुई है।

पहले दो अंकों की तुलना में तीसरा अंक अति सबल है। इस नाटक में राघोबा की राजनैतिक महत्वाकांक्षा, नारायणराव की पत्नी गंगाबाई की हत्या करने की सीमा तक जा पहुँचती है। इसका अनुमान लगाकर नाना फडनवीस ने गंगाबाई को पुरंदर के किले में भेज रखा है। नाना का निश्चय हो चुका है किसी अवस्था में रघुनाथ राव पेशवा नहीं बन सकता। वह नारायणराव का उत्तराधिकारी ही बन सकता है। उन्हें विश्वास है कि गंगाबाई की कोख से जो पुत्र पैदा होगा उसी को पेशवापद पर अधिष्ठित किया जायगा। संयोग से यदि गंगाबाई के पुत्री हुई, तो नाना ने पुरंदर में छः अन्य ब्राह्मण गर्भवती स्त्रियों को ला रखा है। जिस किसी के पुत्र होगा उसी को गंगाबाई का पुत्र घोषित करना नाना की कूट-नीति की चरम सीमा है। गंगाबाई की हत्या करने के लिये राघोबा ने जो चाल चली है वह भी राघोबा के दुर्भाग्य से असफल रहती है। और राघोबा को रँगे हाथों पकड़ा जाता है।

नाटक के अंतिम अंश में नाना स्पष्ट घोषणा करता है कि गंगाबाई का पुत्र ही पेशवा बनेगा और इसी घोषणा पर नाटक समाप्त होता है।

कथावस्तु की दृष्टि से अच्छा होता यदि लेखक नाना फडनवीस के अप्रतिम राजनैतिक कौशल का उद्घाटन करना ही अपना लक्ष्य बनाता। इस नाटक में नाना फडनवीस का जो कर्तृत्व आलोचित हुआ है वह अत्यंत सीमित घरे का है और नाना की चतुराई के साथ न्याय नहीं करता। नाना केवल पेशवा वंश के

संरक्षक नहीं थे, वे तो मराठा साम्राज्य के लौह पुरुष थे। पारिवारिक कलह की अपेक्षा उन्होंने मराठी साम्राज्य की बाहर के शत्रुओं से जो रक्षा की, उसका उल्लेख नाटक में होना नितान्त आवश्यक था। दुर्भाग्य से नाटककार का ध्यान इस ओर नहीं गया है।

सीमित रूप में अपनी मर्यादा में नाना फडनवीस के अलौकिकत्व का जो दिग्दर्शन इस नाटक में हुआ है वह अत्यंत रुचिकर एवं हृद्य है।

नाटक के घटनासंचयन में उन्हीं घटनाओं को स्थान दिया गया है जिनका “आधार सत्य पर ही है। कल्पना उस सत्य को निखारने में सहायक मात्र होती है।”

चरित्रचित्रण में भी नाटककार सफल है। इस संबंध में नाटककार का निवेदन यह है —

“ऐतिहासिक व्यक्तियों में जो सत्य है, उन्हें उद्घाटित करने से ही पात्र सजीव होता है। पात्रों के संस्कार और वातावरण के प्रभाव से जिस मनोविज्ञान का निर्माण होता है उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया में पात्रगत सत्य उभरता है। जब उस सत्य में वस्तुगत कल्पना का योग होता है, तो पात्र में जीवन की वास्तविकता प्रकट होती है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत नाटक में चरित्रों का कार्यकलाप निर्मित हुआ है।”

चरित्रचित्रण की प्राकृतिकता की दृष्टि से दूसरे अंक में नाना के साथ जो नारायणराव और उसकी पत्नी गंगाबाई की बातचीत है, वह अस्वाभाविक लगती है। वह रुचिकर अवश्य है और उसके मंतव्य की दृष्टि से उपयोगी भी है फिर भी स्त्री पुरुष स्वतंत्रता का जो वातावरण उस दृश्य में परिलक्षित होता है, उतने मुक्त वातावरण में पेशवाओं के समय में स्त्री पुरुष नहीं मिल सकते थे।

उसी तरह तीसरे अंक में राघोबा के सहायक बनकर जो लोग विपैले वस्त्रों की भेंट काष्ठपेटिका में गंगाबाई के लिये लाते हैं वे (महादेव और उसका मामा) अत्यंत बुद्धि जैसे लगते हैं। नाना फडनवीस के डाँटने पर मामा अपना नाम तक सरल रीति से नहीं बतला सकता, इतना वह अनाड़ी है। राघोबा की दी हुई कटार बाहरी कक्ष में ही छोड़ जाने की असावधानी कर महादेव अपनी बुद्धि की निर्धनता का परिचय देता है। ऐसे निर्बुद्धि व्यक्तियों को गंगाबाई की हत्या जैसे घोर अत्याचार के लिये चुनना राघोबा एवं आनंदीबाई की बुद्धिशून्यता को ही प्रकाश में लाता है। ऐसे बुद्धुओं की पोल खोलने में नाना की चतुराई का भी विशेष गौरव नहीं है।

नाटक के कथोपकथन पूरे नाटक भर में अत्यंत हृद्य हैं। वे पात्रानुकूल, संक्षिप्त और हृदयस्पर्शी हैं।

नाटक मराठी भाषी प्रदेश से संबद्ध है। लेकिन लिखा गया है हिंदी में। इसलिये नाटककार ने कुछ मराठी भाषा के शब्दों के विशिष्ट संदर्भों को प्रयुक्त करने की योजना की है। भाषा के संबंध में अपनी नीति स्पष्ट करते हुए नाटककार लिखते हैं—

“किसी काल विशेष में जिस भाषा का प्रयोग जिस रीति से होता था उसकी समीपतम स्थिति भाषा को प्राप्त होनी चाहिए.....यह नाटक हिंदी का है, अतः इस नाटक की हिंदी ऐसी होनी चाहिए जो हिंदी पाठकों को तत्कालीन मराठी का वातावरण दे सके।.....कीर्तन द्वारा (गीत गायन द्वारा) मराठी भाषा-भावना का ही वातावरण उपस्थित किया गया है।”

अपने उद्देश्य में नाटककार अवश्य सफल हुए हैं। उदाहरण के लिये पेशवा के लिये संबोधन ‘श्रीमंत’ का प्रयोग, आशीर्वाद के लिये ‘स्वस्ति’ शब्द का प्रयोग, संबोधन संमान के लिये ‘राजमान्य राजश्री’ का प्रयोग, ‘साख’ के अर्थ में ‘पत’ शब्द का प्रयोग उल्लेखनीय हैं। फिर भी कुछ त्रुटियाँ, यद्यपि वे गौण हैं, अवश्य रह गई हैं। उदाहरण के लिये नाना फडनवीस के लिये भी ‘श्रीमंत’ संबोधन का प्रयोग, रामशास्त्री के लिये ‘न्यायमूर्ति’ का प्रयोग ‘पर्वती’ के लिये ‘पार्वती’ का प्रयोग, रघुनाथराव और आनंदीबाई के लिये काका रघुनाथराव और काकी आनंदीबाई, गंगाबाई की सौभाग्यावस्था में ‘श्रीमती’ जैसा संबोधन, गंगाबाई का ‘पार्वतीबाई’ के लिये ‘ताई’ संबोधन, माधवराव के द्वारा रावोबा के प्रति ‘वरिष्ठ’ जैसे विशेषण का प्रयोग मराठी भाषा के भावों के विपरीत हैं। सबसे बड़ी गलती सातारा के दो आगंतुकों को लेकर ‘वारभाई’ के प्रयोग में हुई है। नाटककार ने किस अभिप्राय से ‘वार’ या ‘बार’ शब्द का प्रयोग किया है समझ में नहीं आता।

रंगमंच की दृष्टि से नाटक में एकांक एक दृश्य की योजना हुई है। चरित्रों की संख्या भी मर्यादित और कथा का विस्तार भी सीमित है। नाटक सहजतया सफलता के साथ अभिनीत हो सकता है, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं।

इन दोनों नाटकों में कलात्मकता तथा ऐतिहासिक चरित्रों के व्यक्तित्व की मानवीयता एवं अभिनेयता की दृष्टि से डा० रामकुमार वर्मा की कृति श्रेष्ठतर है इसमें कोई संदेह नहीं।

फिर भी मैं इन दोनों नाटककारों का अभिनंदन एक अलग दृष्टि से ही करना चाहता हूँ। भारतीय इतिहास का चिरस्मरणीय व्यक्तित्व होते हुए भी नाना

फडनवीस विशेष रूप से महाराष्ट्र के इतिहास के, खास कर पेशवाई शासन के अविस्मरणीय नेता हैं। फिर भी एक भी मराठी नाटककार ने नाना फडनवीस को अपनी किसी नाट्यकृति का नायक नहीं बनाया है। पेशवाई से संबंध अनेक मराठी ऐतिहासिक नाटकों में नाना फडनवीस अवतीर्ण हुए हैं लेकिन परोक्ष रीति से और कहीं कहीं गौण रीति से। हिंदी के नाटककारों ने इस व्यक्तित्व को अपनी रचनाओं का नायक बनाकर जो प्रधानता प्रदान की है, वह सचमुच ही प्रशंसनीय है।

शारदीया

ऐतिहासिक नाटक लिखने की जो अनेक प्रेरणाएँ हैं उनमें से एक प्रेरणा है अतीत काल के किसी रहस्य का उद्घाटन करना। 'शारदीया' श्री जगदीशचंद्र माथुर ने इसी प्रकार के एक अतीतकालीन रहस्य का उद्घाटन करने के लिये लिखा है। अपने भ्रमण के सिलसिले में जगदीशचंद्र माथुर नागपुर पहुँचे। नागपुर का अजायबघर देखा और एक अनोखी वस्तु पर उनकी दृष्टि पड़ गई और उसमें उलझ भी गई। वह वस्तु थी एक साड़ी। पाँच गज से अधिक लेकिन उसका वजन था पाँच तोला। साड़ी महीन से महीन थी और धवल से धवल। साहित्यकार माथुर का मन कुतूहल से अभिभूत हुआ। उन्होंने उस बंदी की खोज लगाने की कोशिश की जिसने ग्वालियर के अंगरे तहखानों में आजीवन कारावास की सजा भुगतते हुए यह अनोखी साड़ी बुनकर तैयार की थी।

पृष्ठभूमि के रूप में जो इतिहासानुमोदित कथा मिलती है वह मराठों के इतिहास के एक प्रसिद्ध युद्ध—खर्डा की लड़ाई (सन् १७६५) से संबंध रखती है। उस समय मराठा शासन की बागडोर अल्पवयस्क पेशवा द्वितीय (सवाई) माधवराव के हाथ में थी। लेकिन सूत्रचालक थे नाना फडनवीस और महादजी सिंधिया। सन् १७६४ में महादजी सिंधिया की मृत्यु हुई। और दत्तक पुत्र दौलतराव सिंधिया और नाना फडनवीस में पेशवा पर अधिकार जमाने के लिये होड़ कायम रही। नाना फडनवीस की सवार-टुकड़ी में एक सखाराम घाटगे नाम का पदाधिकारी था। वही इस नाटक का दुर्जन है। वह दुर्दांत महत्वाकांक्षा से ग्रस्त था और उसने बड़ी युक्ति और कुटिलता के साथ अपनी शक्ति तथा प्रभाव का विस्तार किया।

सखाराम घाटगे की पुत्री बायजावाई अर्निच सुंदरी थी। सखाराम घाटगे ने पुत्री के सौंदर्य को अपनी महत्वाकांक्षा का साधन बनाकर उसका विवाह दौलतराव सिंधिया से करा दिया। बायजावाई का प्रेमी था नरसिंहराव जो पेशवाओं की सेना में भेदिये का काम करता था। अपने भेदिये के काम में उसने तरह तरह के हुनर सीख लिये थे और बुनकर कला का तो वह उस्ताद ही बन चुका

था। बायजाबाई का ब्याह दौलतराव से अकंटक संपन्न हो, इस दृष्टि से सखाराम घाटगे ने नरसिंहराव पर व्यर्थ का आरोप लगाकर दौलतराव सिंधिया के हाथों उसे मृत्युदंड दिलाया, जो बाद में ग्वालियर के सरदार जिनसीवाले की सिफारिश से आजन्म कारावास में परिवर्तित करा दिया गया। बायजाबाई ने इस विश्वास से दौलतराव सिंधिया से ब्याह किया कि नरसिंहराव खर्डा की लड़ाई में मौत के घाट उतारा जा चुका है।

अंधेरी कोठरी में नरसिंहराव ने अपनी प्रेमसाधना कायम रखी। उसका प्रेम अब उस भक्ति में परिणत हो चुका था जो अपने पिय पर अपना सबकुछ चढ़ाने के लिये अधीर रहती है। नवधा भक्ति में अर्चना नाम की एक भक्ति है जो भक्त को अपना सर्वोत्तम अपने आराध्य पर निछावर करने के लिये विवश करती है। संयोग से एक दिन बायजाबाई नरसिंहराव के तहखाने में पहुँची। बंदी के रूप में उसने नरसिंहराव के दर्शन किए और नरसिंहराव ने उसे अपनी बुनी हुई साड़ी भेंट की।

नाटक किसी ऐतिहासिक तथ्य के उद्घाटन के लिये नहीं लिखा गया है, बल्कि एक अनोखी कारीगरी के स्रोत का उद्घाटन करने के लिये, एक अतीत-कालीन प्रेमकथा पर प्रकाश डालने के लिये लिखा गया है। इस प्रेमकहानी द्वारा प्रेमविषयक उसी सिद्धांत को दुहराया गया है, जो 'कोणार्क' में प्राप्त होता है। वह सिद्धांत यों है — 'प्रेम कभी विफल नहीं होता। प्रेम उपभोग नहीं है। वह त्याग है। प्रेयसी को लेकर जो प्रेम लौकिक दृष्टि से विफल रहा, वह अभिव्यक्ति की और दिशाएँ ग्रहण करता है। विशु के लौकिक तथा विफल प्रेम ने हमें कोणार्क का मंदिर दिया, नरसिंहराव के विफल प्रेम ने हमें यह अनोखी साड़ी दी।

कथावस्तु अत्यंत सीमित तथा संकेंद्रित (कंसंट्रेटेड) है। इतिहास के साथ साथ कल्पना का भी सहारा लिया गया है। लेकिन वह कल्पना इतिहासविसंगत नहीं है।

चरित्रचित्रण एवं कथोपकथन अत्यंत उच्चकोटि के हैं। प्रत्येक चरित्र अपनी अमिट छाप दर्शकों पर छोड़ जाता है। और कथोपकथन सहज में काव्यात्मक बन जाता है।

दृश्ययोजना में अवश्य कठिनाइयाँ हैं। पहले अंक में दृश्य कुल तीन हैं। लेकिन स्थल दो ही हैं। एक पूना में सजेंराव घाटगे का मकान और खर्डा के युद्धस्थल में मराठा शिविर का खेमा। द्वितीय अंक में कुल दो दृश्य हैं पूना का सजेंराव का मकान और दूसरा ग्वालियर के जिले का तहखाना। तृतीय अंक

में भी ये ही दो स्थल दुहराए गए हैं। इससे दो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। पहले के डीप सीन पर अगले दृश्य का डीप सीन स्थिर रंगमंच पर असंभव है। दो दृश्यों में एक ही स्थल होने से जो कालांतर की सूचना अभिप्रेत है वह भी नहीं मिलती।

नाटक में तीनों अन्वितियों का निर्वाह सुचारु रूप से हुआ है नाटक की भाषा, विषय मराठी क्षेत्र का होते हुए भी हिंदी है। वह स्वाभाविक है, लेकिन एक बात अवश्य खटकती है—वह है बायजाबाई का सूरदास का पद गाना।

सार्वजनिक जीवन की राजनैतिक घटनाएँ व्यक्तियों के निजी जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं तथा ऐतिहासिक चरित्रों की मानवीयता को उभार लाने की दृष्टि से 'शारदीया' को मैं आदर्श ऐतिहासिक नाटकों में सर्वोच्च स्थान देना उचित होगा।

भाँसी की रानी

सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना होगा कि इस विषय को लेकर लिखे गए नाटकों को महाराष्ट्र से संबद्ध हिंदी के ऐतिहासिक नाटक क्यों माना जाय क्योंकि भाँसी महाराष्ट्र के क्षेत्र का राज्य नहीं है। फिर भी भाँसी का राज्य पेशवाओं के आश्रय में था और इसी तथ्य का आश्रय लेकर अंग्रेजों ने पेशवाओं से की गई एक संधि की शर्त के बल पर भाँसी का दत्तकपुत्र अस्वीकार किया।

इन नाटकों को महाराष्ट्र से संबद्ध मानने का दूसरा एक कारण है कि इस नाटक की नायिका तथा सन् १८५७ के स्वातंत्र्य समर के सूत्रधार नानासाहब पेशवा का महाराष्ट्रीय होकर। भाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का मायका, तांबे परिवार पेशवाओं के साथ ही बिटूर पहुँचा।

एक और कारण यह भी है कि स्वातंत्र्य समर के अतुलनीय पराक्रमी सेनापति तात्या टोपे भी महाराष्ट्रीय ही रहे। ये ही कारण हैं कि जिनके बल पर इस विषय से संबद्ध नाटकों को महाराष्ट्र के इतिहास से संबद्ध ऐतिहासिक नाटक माना गया है।

इस विषय पर लिखे गए निम्नलिखित नाटक उपलब्ध होते हैं :

१. भाँसी पतन या भाँसी की रानी
२. महारानी लक्ष्मीबाई—कंचनलता सब्बरवाल
३. भाँसी की रानी—वृंदावनलाल वर्मा
४. भाँसी की रानी—राजेश्वर गुरु
५. भाँसी की रानी—सत्यनारायण सत्य
६. भाँसी की रानी अर्थात् महारानी लक्ष्मीबाई

—न्यादरसिंह 'वेचैन'

ऐतिहासिक नाटकों के वर्गीकरण की दृष्टि से इन नाटकों के निम्नानुसार वर्ग किए जा सकते हैं—

क. इतिहासकाल की दृष्टि से ये सब के सब नाटक आधुनिक इतिहास से संबद्ध हैं।

ख. घटना अथवा चरित्र की प्रधानता को लेकर किए गए वर्गों की दृष्टि से ये सभी नाटक घटनाप्रधान अथवा इपीसोडिकल कहे जा सकते हैं।

ग. चूँकि इन सभी नाटकों में अधिकांशतया भाँसी की रानी के बालपन से लेकर उसकी मृत्यु तक की घटनाएँ अंकित हुई हैं, इस दृष्टि से इन नाटकों को जीवनीप्रधान ऐतिहासिक नाटक (बायोग्राफिकल) कहा जा सकता है।

च. लगभग सभी नाटकों की रचना सोद्देश्य होने के नाते ये नाटक उद्देश्यप्रधान भी कहे जा सकते हैं। इसी उद्देश्य के अनुषंग में अतीतकालीन घटनाओं में वर्तमान की भाँकी पाने और देने का भी प्रयोग परिलक्षित होता है।

एकाध अपवाद को छोड़कर बाकी सब नाटक आधुनिक पश्चिमी शैली में लिखे गए हैं। जिन्होंने संस्कृत नाट्यशैली का अवलंब किया है उनमें भी संस्कृत शैली केवल आरंभ में ही प्राप्त होती है, जो 'नांदी' (बालाओं की ईश्वर प्रार्थना) और प्रस्तावना (नट-नटी या सूत्रधार नटी द्वारा नाट्य-विषय, नाटककार तथा उद्देश्य की सूचना) तक सीमित है।

सभी नाटकों में आरंभ कुमारी मनु (अथवा छत्रीली) के बचपन से हुआ है। आरंभ के दृश्यों में मनु का बालपन नानासाहब और रावसाहब पेशवा की संगति में बीता। शस्त्रविद्या तथा अश्वारोहण की शिक्षा भी इन्हीं की संगति में पाई आदि बातों का उल्लेख मिलता है। दूसरी घटना है भाँसी के महाराज गंगाधरराव से मनु का विवाह। दो एक नाटकों में भविष्यत् के संकेत की दृष्टि से विवाह के अवसर पर दुलहा-दुलहिन के शेला-शालुओं की गाँठ बाँधते समय पुरोहित के हाथ काँपने तथा मनु के पुरोहित से गाँठ कसकर बाँधने की प्रार्थना के उल्लेख मिलते हैं।

तीसरी घटना है गंगाधरराव की मृत्यु तथा मृत्यु से पहले किसी नातेदार के पुत्र आनंदराव को गोद लेना और उसका नाम दामोदरराव रखना। गंगाधरराव की पोलिटिकल एजेंट मि० एलिस से गोद स्वीकार करवाने की प्रार्थना तथा दत्तकपुत्र के नाबालिग रहने तक राज्य के कारोबार को भाँसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई को सौंपने की घोषणा।

चौथी घटना है तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौसी का गोद अस्वीकार करना और भाँसी के राज्य को ब्रिटिश इलाके में मिला लेना। भाँसी की

३ (७०-१)

रानी प्रतिकार के लिए तैयार होती है। नानासाहब पेशवा एवं सेनापति तात्या टोपे इस प्रतिकार को देशव्यापी प्रतिकार का स्वरूप देने की सोचते हैं। विद्रोह की पूरी योजना बनती है।

यह प्रयत्न असफल क्यों हुआ ? इसके निम्नलिखित स्पष्टीकरण भिन्न भिन्न नाटकों में उपलब्ध होते हैं—

१. जो तिथि निश्चित हुई थी, उससे पहले ही ब्रिटिश सेना के हिंदुस्तानी सिपाहियों ने विद्रोह आरंभ किया।

२. गंगाधरराव के दासीपुत्र नवाब अली का अंग्रेजों का साथ देना तथा अपने सेवक पीर अली द्वारा भौंसी की अंदरूनी खबरें स्वार्थवश अंग्रेजों को पहुँचाना।

४. दीवान दूल्हाजू का देश एवं स्वामिद्रोह करके औरछा का फाटक खोल कर अंग्रेज सेना का भौंसी के किले में प्रवेश करा देना।

५. ग्वालियर के राजा सिंधिया का भौंसी की रानी का साथ न देना।

६. रावसाहब पेशवा की विलासिता, आदि।

ऊपर के स्पष्टीकरणों से विदित होगा कि, स्वातंत्र्य समर असफल रहा, अंग्रेजों की कूटनीति के कारण। इस कूटनीति के शिकार भारत के ही कुछ आस्तीन के साँप बने। जैसे 'घर के भेदी' इन नाटकों में मिलते हैं—वैसे कुछ विभीषण भी इन नाटकों में मिलते हैं। जैसे—कालेखॉ डाकू, कुँवर सागरसिंह सुंदर-सुंदर (लक्ष्मीबाई की दासियाँ), मोतीबाई तथा जूही (महाराजा गंगाधर राव की गणिकाएँ)।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से लम्बमग सभी नाटकों में इतिहासभाव की रक्षा की गई है। कुछ छोटे मोटे व्यौरों में अवश्य कल्पना दौड़ाई गई है।

दुर्भाग्य से नाट्यकला की दृष्टि से ये सभी नाटक अति साधारण हैं। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

१. इतिहास की विस्तृत कथा से कौन घटनाएँ प्रत्यक्ष में दिखाई जायँ और किन घटनाओं की सूचनामात्र दी जाय, इसका विवेक नाटककारों ने नहीं रखा है। परिणामतः कथावस्तु विशृंखल हो गई है। दृश्यों की भरमार हुई है और प्रभाव जी दृष्टि से नाटक निष्प्रभ बने हैं। नाट्यात्मकता नहीं आ पाई है और किसी घटना को लेकर कुछ व्यक्तियों के वार्तालाप, इतना ही रूप नाटकों में ग्रहण किया गया है।

ऐतिहासिक नाटक की सफलता के लिये जो बात अनिवार्य होती है उसका अभाव भी इन नाटकों में पाया जाता है। अभिप्राय है ऐतिहासिक चरित्रों

के मानवीय पहलू के उद्घाटन से। एक ही उदाहरण से इस मत का स्पष्टीकरण हो जायगा।

भाँसी की रानी चाहे दत्तक पुत्र की ही क्यों न हो लेकिन माता थी। उसके मातृत्व पक्ष का उद्घाटन अधिक से अधिक एकाध नाटक में ही हुआ है (भाँसी की रानी-पं० राजेश्वर गुरु, अंक २, दृश्य ३)।

मानवीय पहलू अछूता रहने के कारण नाटक की श्रेष्ठता के लिये आंतरिक संघर्ष की जो अनिवार्यता होती है, उसका भी अभाव इन नाटकों में उपलब्ध होता है।

इन नाटकों में अनेक ऐसे दृश्यों की अवतारणा हुई है कि जिनको रंगमंच पर प्रस्तुत करना लगभग असंभव सा है। लक्ष्मीबाई (कंचनलता सब्बरवाल, कष्टसाध्य दृश्य, अंक १ दृश्य २; अंक २, दृश्य ७) में जैसे नानासाहब पेशवा का गंगा के प्रवाह में पाँव छोड़कर संध्या करना। युद्ध, मारकाट, विपत्तियों के सर धड़ से अलग करना आदि। इस प्रकार के दृश्य लगभग असंभव होने से जो दृश्याभास नाटक में अभीष्ट होता है, वह संपन्न नहीं हो पाता।

दो घटनाओं के बीच जो कालांतर अपेक्षित है उसका स्मरण न रखते हुए दृश्यों की योजना हुई है। लक्ष्मीबाई (कंचनलता सब्बरवाल) दूसरे अंक के छठे दृश्य में स्त्री वेष में तथा सातवें दृश्य में पुरुष वेश में घोड़ा दौड़ाती हुई दिखाई गई है।

इनमें से जो थिएट्रिकल नाटक है उनमें ट्रिक सीन्स और ट्रान्सफर सीन्स का भी पर्याप्त प्रयोग किया गया है। सच्चे नाट्य रसिक के लिये ऐसे दृश्य बचपन या खिलवाड़ जैसे लगते हैं।

थिएट्रिकल नाटकों की भाषा अत्यंत साधारण हिंदी उर्दू है जिसके प्रयोगों में कई स्थलों पर अशुद्धियाँ भी मिलती हैं। इन थिएट्रिकल नाटकों में उर्दू ढंग के तुकबंदी के लटकों-खटकों, शेरों, गीतों की भरमार है (भाँसी पतन या भाँसी की रानी)।

इनमें से जो साहित्यिक नाटक हैं, इनमें भी वर्तमानकालिक हिंदी का प्रयोग किया गया है। यह भाषा साहित्यिक है, नाटक के लिये अपेक्षित सजीव वार्तालाप शैली की नहीं। भाषा चरित्रों के अनुसार बदलती नहीं। यहाँ तक कि अंग्रेज अफसर भी शुद्ध तत्सम हिंदी बोल लेते हैं।

‘भाँसी पतन या भाँसी की रानी’ नाटक में नाटककार ने ऐतिहासिक नाटक की दृष्टि से अक्षम्य अपराध किया है। वह है भाँसी की रानी के चरित्र को गिराना।

ऐतिहासिक नाटक की गंभीरता हास्य की अवतारणा करनेवाले दृश्यों का अवकाश नहीं रखती। ‘भाँसीपतन’ जैसे थिएट्रिकल नाटक को छोड़ किसी

नाटक में हास्य का अवलंब नहीं किया गया है। उल्लिखित नाटक में हास्य दृश्यों के प्रसंग यद्यपि मूल कथा से असंबद्ध हैं, फिर भी भावनाएँ असंबद्ध नहीं हैं। हाँ, बाजे बजाने के प्रश्न को लेकर जो फूट हिंदू मुसलमानों में आई है वह नितांत आधुनिक है।

सेनापति तात्या टोपे : पातीराम भट्ट

पातीराम भट्ट का लिखा 'तात्या टोपे' किशोरों के अभिनय योग्य, स्त्री पात्र-हीन नाटक है। इसे हम शालेय नाटक (स्कूल ड्रामा) कह सकते हैं। इस प्रकार के नाटक का प्रधान उद्देश्य रहता है नाटक के द्वारा इतिहास की शिक्षा विद्यार्थियों को देना। स्वाभाविकतया ऐसी रचनाओं में इतिहास प्रबल हो जाता है। और नाटक क्षीण हो जाता है। पातीराम भट्ट द्वारा लिखित नाटक की अवस्था भी दुर्भाग्य से ऐसी ही हो गई है।

नाटक उपदेश प्रधान है। 'तात्या टोपे का युद्ध कौशल, अदम्य उत्साह एवं देशप्रेम किशोरों के लिए एक नई स्फूर्तिका संदेश वहन करता है।' (आमुख) उल्लिखित संदेश के अतिरिक्त नाटककार इस कृति के द्वारा यह भी सूचित करना चाहता है कि सन् १८५७ के स्वातंत्र्ययुद्ध की हार अंग्रेजों की सामर्थ्य के कारण नहीं, बल्कि हमारी स्वार्थलिप्सा तथा एक राष्ट्रीयता के अभाव के कारण हुई। नानासाहब पेशवा के वकील और सलाहकार अजीमुल्ला इस विषय में कहते :

'हिंदुस्तान की बात कौन सोचता है ? दिल्ली के बादशाह सोचते हैं दिल्ली, आग्रा, लाहोर, अजमेर फायम रहे। वस, इसी में उनको खुशी है। आप पेशवा के गद्दी के अधिकारी हैं—आप सोचते हैं केवल कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद हासिल करके सीधे दक्खन में पहुँच जायें और मराठों पर फिर से हुकूमत पा जायें। भौंसी की रानी सोचती है भौंसी से कैसे अंग्रेजों को हटाया जाय। ग्वालियर के सिंधिया मध्य भारत को अपने झंडे के नीचे लाने की ही फिकर में हैं। आप ही बतलाइए महाराज ! सारे हिंदुस्तान की बात कौन छोटे अथवा बड़े सोचते हैं ?' (पृ० १८)

सन् १८५७ का स्वातंत्र्य समर क्यों विफल हुआ इसके संबंध में तात्या-टोपे का वक्तव्य द्रष्टव्य है—

'इस संवर्ष की सीढ़ी में मेरे साथी रहे, नाना साहब, अजीमुल्ला, टीका सिंह और ज्वालाप्रसाद जैसे दिग्गज। वे हवा हो गए। उसके बाद लखनऊ में भी टीका सिंह का साथ रहा। उस समय शत्रु भी मिलें तोहे नरी लारेंस और हैब्लाक की तरह—वीरता की परख करनेवाले। उसके बाद शक्ति की ज्वलंत अग्निशिखा भौंसी की रानी के साथ सहयोग करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था,

हिंदी नाट्यसाहित्य में विवृत महाराष्ट्र का इतिहास

वह भी गयी ! उसके बाद अधोगति शुरू हुई। पद-पद पर विश्वासघातकों से पाला पड़ा। ग्वालियर, भरतपुर, टोंक, बूँदी में एक ओर अपने पक्ष में अधम से अधम केवल नाम के बंधु मिले। मुझे हँसी आती है। लारेंस, हैव्लाक, नील से गौरव पूर्वक लड़ने के बाद अब मुझे अपने सामने दिखाई देते हैं शावर, स्मिथ और माइकेल जैसे तीन कौड़ी के अंग्रेज अफसर, जिनका नाम इतिहास बिल्कुल याद न रखेगा।' (पृ० ६०)

नाटक ६० पृष्ठों का है। तीन अंक हैं। पहले अंक में चार, दूसरे में पाँच और तीसरे में चार दृश्य मिलाकर कुल तेरह दृश्य हैं। दृश्यों के केवल स्थलों का संकेत मिलता है। दृश्य - स्थल के विशेष व्यौरे नहीं दिए गए हैं, न दृश्यों का क्रम रखने में रंगमंच की सुविधा का स्मरण रखा गया है। दृश्य में कालांतर का भाव भी विस्मृत सा रखा गया है।

नाटक की दृष्टि से केवल कथोपकथन - स्वरूप ही यह नाटक है। व्यक्ति एक स्थल पर आकर बातचीत करते हैं। बातचीत समाप्त होने पर प्रस्थान करते हैं। इससे अधिक नाट्यात्मकता नाटक को प्राप्त नहीं है। पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान भी सप्रयोजन नहीं हैं।

नाटक की भाषा खड़ी बोली हिंदी है। अंग्रेज अफसरों के मुख में टूटी फूटी हिंदुस्तानी तथा वहीं कहीं अंग्रेजी रखी गई है। मुरलिम पात्र भी हिंदी ही बोलते हैं। इन पात्रों की भाषा में जो उर्दू की पुट अपेक्षित थी, नहीं मिलती।

नाटक में चरित्र संख्या २८ से ३० तक है, जिसमें १५ से अधिक चरित्र प्रधान हैं। शालेय नाट्य की दृष्टि से यह संख्या समर्थनीय है, क्योंकि शालेय नाट्य का उद्देश्य होता है अधिक से अधिक छात्रों को रंगमंच पर लाकर उन्हें आत्मप्रदर्शन का अवसर दिया जाय। इस दृष्टि से यह संख्या समर्थनीय हो सकती है। इसे भी ऐतिहासिक नाटक की अपेक्षा नाट्यरूप इतिहास कहना अधिक समीचीन होगा।

उपसंहार

१. महाराष्ट्र के इतिहास से संबद्ध नाटक लिखनेवालों में सब के सब महाराष्ट्रीयतर हिंदी भाषी लेखक हैं। स्वाभाविक ही वे महाराष्ट्र के इतिहास से अपरिचित हैं। जो परिचय उन्हें प्राप्त है वह ग्रंथों द्वारा उपलब्ध जानकारी से है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', डा० श्यामबिहारी मिश्र तथा शुक्रदेवबिहारी मिश्र, श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी', श्री बृंदावनलाल वर्मा, डा० कंचनलता सन्नरवाल, पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' एवं जगदीशचंद्र माथुर ने महाराष्ट्र

के इतिहास की अधिकृत पुस्तकों से जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की है। शेष नाटककारों ने ऐतिहासिक नाटक में आवश्यक ऐतिहासिक सजगता के भाव के प्रति उपेक्षा ही प्रकट की है।

२. सब के सब नाटक महाराष्ट्र के राजनैतिक इतिहास से संबंध रखते हैं। केवल पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' के नाटक में समर्थ रामदास के निमित्त कुछ सांस्कृतिक इतिहास की झलक मिलती है।

३. सभी नाटक घटनाप्रधान हैं, तथा प्रकरणात्मक। शैली की दृष्टि से सभी नाटकों में कालक्रमानुसारी उद्घाटनप्रधान शैली का अवलंबन किया गया है।

४. इन नाटकों में थिएट्रिकल तथा साहित्यिक दोनों प्रकार की प्रणालियों के नाटक मिलते हैं। थिएट्रिकल नाटकों का उद्देश्य अद्भुत द्वारा कुतूहलवर्धन द्वारा सस्ता मनोरंजन है। साहित्यिक नाटकों का उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना है। अतीत की घटनाओं के चित्रण से वर्तमान के लिये सीख प्रदान करना इन नाटकों का ध्येय है।

५. ऐतिहासिक घटना व्यक्ति के जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है इसका सुंदर उदाहरण श्री जगदीशचंद्र माथुर के 'शारदीया' में मिलता है। अन्य नाटकों में ऐतिहासिक व्यक्तियों के लौकिक जीवन को ही अंकित किया गया है। अतीत चरित्रों के निजी जीवन को प्रकाश में लाने का प्रयत्न नहीं हुआ है न उन चरित्रों के मानवीय पहलू को स्पर्श करने की चेष्टा हुई है।

६. सभी नाटकों में वर्तमान काल की ही भाषा प्रयुक्त की गई है। 'शारदीया' को छोड़ अन्य नाटकों में काव्यात्मकता नहीं प्राप्त होती। 'शारदीया' की काव्यात्मकता निस्सन्देह ऊँची कोटि की है।

७. इतिहास के प्रतिकूल हास्य का अवलंबन कुछ इने गिने नाटकों में ही हुआ है। पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' के हास्य को छोड़ अन्य नाटकों का हास्य भद्दा एवं भौंडा है।

८. थिएट्रिकल शैली के नाटक अभिनयोपयोगी न होते हुए भी रंगमंचोपयोगी हैं। साहित्यिक नाटकों में रंगमंचीय आवश्यकताओं की अवहेलना की गई है। केवल पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' का 'छत्रपति शिवाजी या समर्थ रामदास', मोहन लाल महतो 'वियोगी' का 'अफजलवध', डा० रामकुमरा वर्मा का 'नाना फड़नवीस' एवं श्रीजगदीशचंद्र माथुर का 'शारदीया' अवश्य अभिनयोपयोगी हैं।

‘पृथ्वीराजरासउ’ के कुछ शब्दार्थों पर पुनर्विचार

[शंभुसिंह मनोहर]

डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित पृथ्वीराजरासउ का एक वैज्ञानिक संस्करण साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी से प्रकाशित हुआ है। उक्त ग्रंथ में प्रस्थापित मान्यताओं तथा उसमें स्वीकृत पाठ का विवेचन एक स्वतंत्र प्रबंध की वस्तु है, जो प्रस्तुत लेख का प्रतिपाद्य नहीं। यहाँ केवल कुछ शब्दार्थों की ही चर्चा उद्दिष्ट है तथा कुछ विनम्र शंकाएँ हैं जिन्हें विद्वान् संपादक एवं रासो के विश्व अध्येताओं के विचारार्थ निवेदन करना ही इष्ट है। शब्दार्थों के संदर्भ में यत्र तत्र जो पाठालोचन विषयक चर्चा हुई है वह आनुप्रांगिक रूप से ही।

१. लहु गुरु मंडि त छंडिहउं पिंगल भरह भरथ १-पृष्ठ ८, पद्य ५ पंक्ति २

डा० माताप्रसाद ने उक्त पाठ मानते हुए इस पंक्ति का अर्थ यों किया है—लघु-गुरु का मंडन करके पिंगल [के छंद-सूत्र] भरत [के नाट्यशास्त्र] और महाभारत को [पीछे ?] छोड़ दूँगा—उनसे बढ़कर रचना करूँगा।

प्रस्तावित अर्थ—विद्वान् संपादक द्वारा गृहीत पाठ हमें अशुद्ध एवं भ्रांत प्रतीत होता है क्योंकि यह भारतीय कवियों की विनयभावना के अनुरूप नहीं। हमारे यहाँ श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कवि भी अपने विषय में ऐसी आत्मश्लाघात्मक दर्पोक्ति नहीं करता कि मैं काव्यरचना में अपने पूर्ववर्ती कवियों को पीछे छोड़ दूँगा या उनसे बढ़कर काव्यरचना करूँगा। तद्विपरीत संस्कृत कवियों से लेकर हिंदी कवियों तक ने काव्यारंभ में प्रायः अपनी विनम्रताप्रकाशन की परंपरा का ही निर्वाह किया है। उदाहरणार्थ तुलसी जैसे समर्थ कवि ने भी यही कहा—

भाषा भनिति भोरि मति मोरी

हंसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।—रामचरित मानस

इसी प्रकार जायसी ने भी अपने को ‘सब कवियों का पिछलगा’ कहकर इसी विनयपरंपरा का निर्वाह किया है—

हौं सब कविन्ह केर पछिलगा।

किछु कहि चला तबल देई डगा।—पदमावत

उपर्युक्त संदर्भ में डा० गुप्त द्वारा गृहीत पाठ की प्रामाणिकता हमें संदिग्ध प्रतीत होती है। ध्यान देने की बात यह है कि उक्त पद्य के ठीक पूर्ववर्ती पद्य में वही चंद अपनी विनम्रता प्रकट करता हुआ यों कहता है—

गिरा सेष बानी कवी कव्व बंधं ।

जिनै सेस उच्छिष्ट कवि चंद छंद ॥

एक छंद में कवि अपनी विनम्रता व्यक्त करता हुआ यह कहे कि अन्य कवियों द्वारा रचित काव्यप्रबंध के शेष उच्छिष्ट को ही वह छंदबद्ध कर रहा है और दूसरे ही छंद में यह दावा करे कि वह काव्यरचना में सबको पीछे छोड़ देगा, इसमें कितना अंतर्विरोध एवं भावविसंगति है, इस पर पाठक स्वयं विचार करें ।

अतः इस छंद में डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा गृहीत पाठ के स्थान पर हम डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं श्री नामवर सिंह द्वारा मान्य पाठ को ही शुद्ध मानते हैं जिसे कविराव मोहन सिंह ने भी अपने द्वारा संपादित रासो में स्वीकार किया है । वह यों है—

लहु गुरु मंडित खंड यहि पिंगल अमर भरथ्य ॥

२. भुवगोल लिपित दिष्यत सहीर ।—पृष्ठ १०, पद्य १, पंक्ति ६

इस पंक्ति में आए 'सहीर' शब्द का अर्थ 'हेलापूर्वक' करते हुए डा० गुप्त ने पूरी पंक्ति का अर्थ यों किया है—'(कन्नौजराज ने) जो कुछ लिखित भूगोल (भू-वृत्त) था उसको हेलापूर्वक देखा ।'

प्रस्तावित अर्थ—डा० गुप्त द्वारा इस पंक्ति के किए गए अर्थ से ऐसा ध्वनित होता है जैसे कोई भूगोल की पुस्तक कन्नौजराज के सामने पड़ी हो और उसे उन्होंने हेलापूर्वक (?) देख लिया हो । साहित्य का सामान्य विद्यार्थी भी यह जानता है कि 'हेला' नायिकाओं की एक सहज शृंगारिक चेष्टा, जिसे 'हाव' की संज्ञा दी गई है, का ही एक भेद है तथा उसी अर्थ में प्रायः रूढ़ हो गया है । 'हाव' के चार भेदों में अत्यन्तज हाव भी एक है, जिसके अंतर्गत हेला, विलास, विभ्रम, किलकिंचित्, विद्वत्, हसित और चकित की गणना की गई है । यद्यपि कुछ आचार्यों ने (जैसे भोज आदि) इन्हें पुरुषों से भी संबद्ध माना है तथापि सामान्यतया 'हेला' से नायिकाओं की शृंगारिक चेष्टाओं का ही बोध होता है । अतः कन्नौजराज के प्रसंग में हेलापूर्वक देखना निरा असंगत और हास्यास्पद है । यहाँ वर्णन कन्नौजराज के दृष्टिनिक्षेप का नहीं वरन् राजसूय यज्ञ के निमित्त उनके द्वारा लिखित भू-वृत्त की जानकारी प्राप्त करने का है ।

वस्तुतः 'सहीर' शब्द का मूल रूप 'सुहीर' (अप०) < 'सुधीर' (सं०) है; जिसका अर्थ है विशिष्ट धीरता या दृढ़ संकल्प युक्त । यह शब्द यहाँ कन्नौजराज के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है । तदनुसार पूरी पंक्ति का अर्थ होना चाहिए—'उस सुधीर (दृढ़-संकल्पयुक्त) [कन्नौजराज] ने समस्त लिखित भू-वृत्त का अवलोकन किया ।'

'सहीर' के मूल अपभ्रंश रूप 'सुहीर' (सं० सुधीर) के लिये देखिए हेमचंद्र (८, १, १८७) ।

साथ ही राजस्थान भारती (भाग १, अंक १, अप्रैल १९४९) में प्रकाशित डा० दशरथ शर्मा एवं प्रो० मीनाराम राँगा के लेख 'द ओरिजिनल पृथ्वीराज रासो: ऐन अपभ्रंश वर्क' में उद्धरण स्वरूप इस पंक्ति का जो पाठ, उसके अपभ्रंश रूपांतर सहित दिया गया है, वह भी द्रष्टव्य है । टेक्स्ट आफ द बीकानेर रिसर्शन -- द अपभ्रंश रेंडरिंग—

‘भुवगोलु लिखित दिखये सहीर’ । ‘भूगोलि लिखिअ देखिअ सुहीर’

नीचे संपादकीय पादटिप्पणी में 'सुहीर' की व्याख्या यों की गई है—
'सुहीर = सुधीर ।' विद्वान् लेखकों द्वारा रासो के हिंदी एवं अपभ्रंश पाठ का अंग्रेजी रूपांतर भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें 'सहीर' (अप० सुहीर) का अंग्रेजी गद्यानुवाद इस तरह किया गया है—'दिस रेजोल्यूट (रूतर)' ।

अतः 'सहीर' शब्द का डा० गुप्त द्वारा किया गया 'हेलापूर्वक' अर्थ निराधार है ।

३. जिम गामिनी सभी बुधजन उविठ । —पृष्ठ १४, पद्य ३, पंक्ति ४०

डा० गुप्त ने पूर्वपंक्ति सहित इसका अर्थ यों किया है—'मंद आदर (निरादर) के कारण बसीठ उठकर चले गए जैसे ग्रामीण (ग्राम-प्रमुख) की सभा से बुधजन उद्वेष्टित (बंधनमुक्त) हुए हों ।'

प्रस्तावित अर्थ—उपयुक्त पंक्ति में 'उविठ' शब्द के अर्थ में काफी क्लिष्ट कल्पना की गई है । 'उविठ' का सीधा सादा अर्थ 'उठ जाना' है । 'बंधनमुक्त' शब्द से यह ध्वनित होता है जैसे बुधजनों को ग्रामसभा में बाँधकर रखा जाता हो । यहाँ सीधा सा अर्थ यह है कि निराहत होने के कारण दूत वैसे ही उठकर चले गए जैसे ग्रामसभा के बीच से बुद्धिमान उठकर चले जाते हैं ।

ग्रामसभा में बैठने का जिनको अनुभव है वे जानते हैं कि बात बढ़ने पर वहाँ लोग तुरंत गाली गलौज के स्तर पर उतर आते हैं । अतः समझदार व्यक्ति ऐसे मौके पर चुपचाप वहाँ से खिसक जाते हैं । यहाँ 'उविठ' शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

४. अध चषन लिषन छिति नषन कीन । —पृष्ठ २०, पद्य ५, पंक्ति ८

डा० गुप्त ने उपयुक्त पंक्ति में 'अध चषन' का अर्थ 'अर्द्ध नेत्रों से' किया है—'अर्द्ध (निमीलित) नेत्रों से (देखती हुई) वे नखों से क्षिति पर लिख रही थीं ।'

४ (७०-१)

प्रस्तावित अर्थ—वाच्यार्थ की दृष्टि से डा० गुप्त का अर्थ चाहे ठीक हो, परंतु काव्यरूढ़ि के अनुसार इसका अर्थ 'अधोदृष्टि' ही संगत प्रतीत होता है। वस्तुतः अधोदृष्टि से (अर्थात् नमित मुख) नखों से धरती खरोचना नायिकाओं के हाववर्णन की एक बहुप्रयुक्त काव्यरूढ़ि है जिसका अनेक प्राचीन काव्यों में उल्लेख मिलता है। अतः उक्त संदर्भ में हमारे विचार से 'अध चपन' का अर्थ 'अर्द्ध निमीलित दृष्टि' न होकर 'अधोदृष्टि' (लीला या विभ्रम से नीचे देखना) है। उदाहरणार्थ जैन कवि कीर्तिवर्द्धनरचित 'सदयवत्स सावलिंगा चउपइ' की निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है जो यहाँ प्रस्तावित अर्थ की पुष्टि करती है—

वाम चरण अँगूठे नखे खिण खिण नीचो जोइ भूमि लिखे ।

यहाँ 'नीचो जोइ' शब्दावली से 'अध चपन' का अर्थ 'अधोदृष्टि' होने का स्पष्ट संकेत मिलता है। 'संदेश रासक' एवं 'ढोलामारू रा दूहा' में भी इस काव्यरूढ़ि का प्रयोग हुआ है यद्यपि उनमें अधो-दृष्टि-वाचक शब्दों का उल्लेख नहीं हुआ है —

गाहा तं निसुणे विणु गायमरालगइ

चलणंगुडि घरत्ति सलज्जिर उलिहइ ॥ —संदेश रासक, ४१

पंथी हाथ संदेसइइ, धण विललंती देह ।

पगसूँ काटइ लीहटी, उर आँसुआँ भरेह ॥ १३॥

—ढोलामारू रा दूहा

अतः काव्यरूढ़ि के संदर्भ में यहाँ संकेतित अर्थ विचारणीय है ।

५. तजहि पिय कंठ जिम पत्त गोरी — पृष्ठ २६, पद्य ७, पंक्ति ६

डा० माताप्रसाद ने पूर्वपंक्ति सहित इसका अर्थ यों किया है—
'गौरांगनाएँ अपने प्रियों (पतियों) के कंठ छोड़ रही हैं, जैसे (वृक्ष के) पत्तों को छोड़ देते हैं ।'

प्रस्तावित अर्थ—यहाँ 'पत्तों को छोड़ देते हैं' शब्दावली से यह व्यंजना होती है जैसे छोड़नेवाला (कर्ता) कोई दूसरा है । अर्थात् पत्तों का कर्म के रूप में प्रयोग किया गया है—जब कि यहाँ पत्ते कर्ता हैं, कर्म नहीं । अतः उद्दिष्ट भावानुसार अर्थ यों होना चाहिए—'पत्तों के समान' । अर्थात् जैसे पत्र तरु-शाखाओं को छोड़कर भर पड़ते हैं वैसे ही प्रियाएँ अपने प्रियों से आलिंगनमुक्त हो विलग हो रही हैं ।

६. पिय प्रथीराज रिपू किअ तउ बिपरीत कीन विरंचि ॥

—पृष्ठ २६, पद्य ८, पंक्ति २

(प्रसंग—शत्रु रमणियां अपने पतियों से कह रही हैं—) ‘हे प्रिय, पृथ्वीराज को जो तुमने शत्रु किया तो विधाता ने [सब कुछ] उलटा कर दिया ।’

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति का अर्थ हमारे विचार से यों किया जाना चाहिए—‘हे प्रिय ! पृथ्वीराज को जो तुमने शत्रु किया तो (मानो) विधाता को ही अपने विपरीत (प्रतिकूल) किया ।’ अर्थात् उससे शत्रुता करना मानो दैव को ही अपने पर प्रकुपित करना है ।

‘विधाता ने उलटा कर दिया’—यह अर्थ असंगत है ।

७. युवजन युवति अनु करिज साज ।—पृष्ठ ३०, पद्य १०, पंक्ति १०

(प्रसंग—पृथ्वीराज के आक्रमण के भय से पंगराज जयचंद के राज्य में छाप आतंक का वर्णन है ।)

डा० गुप्त ने पूर्वपंक्ति सहित इसका अर्थ यों किया है—‘सभी राज्यों में पुण्य नहीं सुनाई पड़ रहे हैं और युवतियों ने आसक्ति की है ।’

प्रस्तावित अर्थ—यहाँ पृथ्वीराज के जयचंद पर होने वाले आक्रमण के संदर्भ में ‘युवतियों ने आसक्ति की है’ का क्या अर्थ है ? बात पृथ्वीराज के आक्रमण की चल रही है न कि युवतियों की प्रेमलीला की । पंक्ति में आए ‘युवजन’ शब्द का अर्थ करने की भी विद्वान् संपादक ने आवश्यकता नहीं समझी । साथ ही ‘साज’ का अर्थ ‘आसक्ति (साज > सज्ज > सज्ज = आसक्ति करना)’ भी खींचतान करके ही बिठाया गया है । हमारी समझ में इस तथा आगे वाली पंक्ति का अर्थ यों किया जाना चाहिए—‘(हे पृथ्वीराज)’ समस्त युवक और युवतीजन (युवति अनु) तुम्हारी (यह कहकर) शोभा (साज) कर रहे हैं कि संयोगिता के योग्य वर आज तुम्हीं हो । अर्थात् सभी प्रेमी युगल तुम्हारी परस्परानुरूप जोड़ी की मुक्त कंठ से सराहना कर रहे हैं । यहाँ ‘युवतिअनु’ शब्द एकात्मक है— युवति अनु < युवतिजन । पाठांतरों में भी ‘युवतीजन युवजन’ ऐसा मिलता है जो हमारे भाव की पुष्टि करता है ।

८. निर्माली हथमेव मालवधर मेवाड मंडोवर ।

—पृष्ठ ३७, पद्य १८, पंक्ति ३

डा० माताप्रसाद गुप्त ने ‘निर्माली हथमेव’ का अर्थ ‘निर्माल्य जिस प्रकार हाथ में हो’ ऐसा किया है ।

प्रस्तावित अर्थ—यह प्रसंगानुसार असंगत प्रतीत होता है । निर्माल्य देवार्पित प्रसाद का वाचक है, जिसमें एक सात्विक समर्पण का भाव जुड़ा हुआ

है जबकि यहाँ प्रवंग युद्धजन्य रक्तपात से उपलब्ध अधिकृत प्रदेशों का है। एक समर्पित वस्तु है तो दूसरी अधिकृत। भला दोनों में क्या साम्य ?

अतः मालव, मेवाड़, मँडोवर आदि प्रदेशों को जीतकर निर्माल्य की भांति हस्तगत करने की उपमा अपने आप में एक भावविसंगति है।

तद्विपरीत हमारा अनुमान है कि यहाँ 'निर्माली' का अर्थ 'निर्माल्य' न होकर 'निम्मार' या निमाड़ प्रदेश है जो खँडवा के आसपास है। यहाँ कवि दूती के मुख से जयचंद द्वारा विजित प्रदेशों का उल्लेख करा रहा है। अतः इस पंक्ति में वर्णित अन्य भौगोलिक स्थलों—नीमच, बैरागर, कर्णाट, करवीर आदि के समान यहाँ 'निर्माली' 'निमाड़' प्रदेश का ही वाचक जान पड़ता है—'निर्माल्य' का नहीं जिसमें कोई भावसंगति नहीं है। इसका एक अन्य पाठांतर 'निम्माले' भी मिलता है जिसे श्री नरोत्तमदास स्वामी ने अपने लघुतम संस्करण में स्वीकार किया है।

६. वल्ली वसंता हरे।—पृष्ठ ३८, पद्य २०, पंक्ति ३

डा० गुप्त ने इसका अर्थ यों किया है—'वल्ली [क्यों वल्ली है ?] क्योंकि वह वसंत को ग्रहण करती है।'

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति में 'हरे' का अर्थ 'हरण करती है' या 'ग्रहण करती है' न लगाकर 'हरी भरी होती है' या 'पुष्पित होती है' मानना क्या अधिक संगत न होगा ? अर्थात् वल्ली वसंत में हरी भरी होने के कारण ही वल्ली है। 'वसंत को ग्रहण करती है'—इस शब्दावली से कवि के उद्दिष्ट भाव हरी भरी होने या पुष्पित होने की स्पष्ट व्यंजना नहीं होती।

१०. पुट्टि परमारि पचारिय।—पृष्ठ ४६, पद्य ११, पंक्ति ३

डा० गुप्त ने 'परमारि' का अर्थ संदिग्ध मानते हुए कोष्ठक में '(पट्टरात्ती ?) दिया है। यह भ्रान्त है।

प्रस्तावित अर्थ—परमारी का अर्थ 'पट्टरात्ती' नहीं। परमारी वस्तुतः पृथ्वीराज की परमारवंशीय रानी (इच्छिनी) थी जो कैमासवध के समय पृथ्वीराज के पृष्ठभाग में खड़ी थी। क्षत्रियों में रानियों का उल्लेख उनके नाम से न किया जाकर उनके पितृवंशीय गोत्र से करने की सामान्य परिपाटी है। उदाहरणार्थ हाड़ा वंशीय रानी को हाड़ीजी; भाटी वंशीय को भटियानीजी आदि कहकर संबोधन किया जाता है। अतः यहाँ 'परमारी' का पट्टरात्ती से कोई संबंध नहीं है।

११. इमि परउ अयास अवास तइ जिमि निसि नसित नषत्रपति।

—पृष्ठ ४६, पद्य ११, पंक्ति ६

डा० माताप्रसाद ने इस पंक्ति का अर्थ यों किया है—‘कयमास आकाश [-चुंबी] आवास (प्रासाद) से इस प्रकार गिरा जैसे निशा में नक्षत्रपति (चंद्रमा) विनष्ट होकर गिरा हो ।

प्रस्तावित अर्थ—मेरे विचार से डा० गुप्त द्वारा गृहीत इस पंक्ति का पाठ ही सदोष है । इसे स्वीकार करने पर प्रश्न होता है कि निशा में नक्षत्रपति (चंद्रमा) कब विनष्ट होकर गिरता है ? उल्कापात होते तो देखा व सुना गया है परंतु चंद्रमा को आकाश से गिरते अद्यावधि न देखा है न सुना है । वस्तुतः इस पंक्ति का शुद्ध पाठ वह है जो डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं डा० नामवर सिंह ने ग्रहण किया है —

यों परयो कैमास आवास तें जानि निसानन छित्रपति ।

—संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृष्ठ ६८

अर्थात् कैमास (वाणाहत होकर) आवास से यों गिरा जैसे किसी छत्रपति (राजा या प्रतापी सम्राट्) का निशान (ध्वज) गिरा हो ।

डा० गुप्त के ‘अयास आवास’ तथा ‘नसित नक्षत्रपति’ पाठ में, जैसे कि प्रायः अन्यत्र भी, क्लिष्ट कल्पना की बोझिलता ही देखने में आती है । उपमागत अनौचित्य तो इसमें है ही ।

११. अप्पु राय वलि बनि गयु । —पृष्ठ ५१, पद्य १४, पंक्ति १

इस पंक्ति में आए ‘वलि’ शब्द का अर्थ डा० गुप्त ने ‘वल् = लौटना, वापिस आना’ किया है ।

प्रस्तावित अर्थ—यद्यपि डा० गुप्त द्वारा निर्देशित ‘वलि’ शब्द का उपयुक्त अर्थ मान्य है, तथापि प्राचीन राजस्थानी साहित्य में ‘वलि’ का इससे भिन्न एक अन्यार्थ भी होता है और वह है ‘पुनः, फिर या तदनंतर’ । यहाँ ‘वलि’ शब्द इसी अन्यार्थ में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है क्योंकि ‘लौटने’ या ‘चले जाने’ का वाचक शब्द यहाँ ‘गयु’ आ गया है । अतः ‘वलि’ का वाचक शब्द ‘फिर’ या ‘तदनंतर’ ही उद्दिष्ट है । अर्थ होगा—‘तदनंतर स्वयं राजा (पृथ्वीराज) बन को चला गया’ । इस अर्थ में ‘वलि’ शब्द का प्रयोग प्राचीन राजस्थानी साहित्य में प्रचुर हुआ है । कुछ उदाहरण—

- (१) वलि मत पड़्यो एहको दुकाल ।—समयसुंदर; चंपक सेठ चौपई
- (२) मीरां नई वलि दीधा गाम ।—हम्मीरायण
- (३) वलै पाय रैणा तरी रगुवीरं ।—सूरजप्रकाश
- (४) औरंग वलै अजैगढ़ आयो ।—राजरूपक

उपर्युक्त पंक्तियों में 'वलि' या 'वलै' पुनः अथवा फिर के अर्थ ही में प्रयुक्त हुआ है विवेच्य पंक्ति में भी यही अर्थ उद्दिष्ट है ।

१२. एक रवि मंडल भेदहि एक ति करिसह दंदु ।—पृष्ठ ७६, पद्य ४, पंक्ति २
(प्रसंग— शुभाशुभ शकुनों का फल बतलाते हुए चंद पृथ्वीराज से कह रहा है) डा० गुप्त का अर्थ है —

'एक [प्रकार का शकुन] [योद्धाओं को रण में] वीरगति दिलाकर रवि-मंडल-भेदन [उपस्थित] करेगा और एक [प्रकार का शकुन] द्वंद्व (सुख दुख) [उपस्थित] करेगा ।'

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति में आए 'दंदु' शब्द का अर्थ डा० गुप्त ने कोष्ठक में 'सुख-दुख' किया है किंतु यहाँ प्रसंगतः 'दंदु' का अर्थ केवल 'दुःख' या 'क्लेश' है—सुख नहीं । शुभ शकुन योद्धाओं को वीरगति दिलाकर रवि-मंडल-भेदन का सौभाग्य देगा तो दूसरी ओर अशुभ शकुन द्वंद्व अर्थात् दुःख या क्लेश उपस्थित करेगा । यह ठीक है कि 'दंदु' का मूल रूप 'द्वंद्व' है जिसमें 'सुख-दुख' दोनों अंतर्भावित हैं, तथापि कभी कभी 'दंदु' शब्द का एकांततः दुःख के अर्थ में ही प्रयोग होता है । इसके इस विशिष्ट एवं एकार्थवाची प्रयोग के उदाहरणस्वरूप यह पंक्ति रखी जा सकती है—

दुसह दुराज प्रजानु को क्यों न वड़े दुख दुंद ।—बिहारी

१३. सुर णर टट सालं कुसुमित लालं अलि जालं ।—पृष्ठ ८२, पद्य ११, पंक्ति ६

डा० गुप्त ने इस पंक्ति का अर्थ यों किया है—'तुम्हारे तट पर सरकंडे नरकुल और साल लाल (सुंदर) कुसुमित होते हैं और [उन पर] अलि-समूह [गुंजार करता] रहता है ।'

प्रस्तावित अर्थ—यहाँ गंगा की शोभा तथा महिमा का वर्णन है । उपर्युक्त पंक्तियों में 'सुर णर' का अर्थ डा० गुप्त ने जो सरकंडे और नरकुल किया है वह हमें युक्त नहीं जान पड़ता । गंगातट पर भला कौन से सरकंडे और नरकुल होते हैं ? दूसरे, दोनों प्रायः समानार्थक हैं ।

अतः हमारे विचार से यहाँ 'सुर णर' का अर्थ 'देवता और मनुष्य' है, सरकंडे और नरकुल नहीं । पूरी पंक्ति का अर्थ तब यों होना चाहिए—

तुम सुर व नरों (की वंद्य हो) एवं तुम्हारे तट पर सुंदर साल (वृक्ष) कुसुमित हैं जिन पर अलिकुल निरंतर गुंजन करता रहता है ।

अथवा

तुम्हारे तट पर सुर व नर (निवास करते हैं) एवं कुसुमित साल वृक्षों पर सुंदर अलिकुल नित्य गुंजन करता रहता है ।

अतः ‘सुर रुर’ को देवों एवं मानवों का वाचक मानना संगत होगा जिनका गंगावर्णन के प्रसंग में उल्लेख परंपरापुष्ट है।

१४. अमर छुरि करिजं ।—वही पद्य, पंक्ति १२

इस पंक्ति का अर्थ यों किया गया है ‘तुम अमरों (देवताओं) के लिए छलकारिणी (?) हो।’

प्रस्तावित अर्थ—गंगा नदी अमरों के लिये भला कैसे छलकारिणी है ? इसमें संपादक ने यदि कोई व्याजस्तुति सोची हो तो वह हमारे लिये तो अगोचर ही है। इस पंक्ति का अर्थ क्या यों नहीं किया जा सकता—तुम क्षर (अर्थात् नाशमान या मरणशील मानवों) को अमर करनेवाली हो अर्थात् अमरत्वदायिनी हो।

अथवा

तुम्हारी छुरि (छार < चार = तटधूलि) अमर करनेवाली है; मोक्षदायिनी है।

परंतु देवताओं के साथ छल करनेवाला अर्थ तो गंगा के माहात्म्य के अनुकूल नहीं पड़ता।

१५. उभय कनक सिंभ भ्रिग कंठीव लीला ।—पृष्ठ ८४, पद्य १२, पंक्ति १

उपर्युक्त पंक्ति में आए ‘भ्रिग’ शब्द का अर्थ डा० गुप्त ने टीका में ‘मृगों की कंठध्वनि’ किया है।

प्रस्तावित अर्थ—पाठ में शब्द ‘भ्रिग’ है ‘मृग’ नहीं। अतः अर्थ ‘भ्रमर-ध्वनि’ होना चाहिए। मृगों की ध्वनि कदाचित् कंठस्वर के उपमान के रूप में काव्य में गृहीत नहीं हुई है। इसे छापे की अशुद्धि भी मान लिया जाता परंतु शुद्धिपत्र में इसका कोई संशोधन नहीं किया गया है। वस्तुतः कंठध्वनि के लिये भ्रमरगुंजन काव्य का अति प्रचलित उपमान है। सुर ने भी भ्रमरगुंजन में ययुना के विरहजन्य प्रलाप की उत्प्रेक्षा की है।

१६. ति लगिग कट्टि जेहुरी सुभाय सोभ पिंडुरी ॥

—पृष्ठ ८६, पद्य १४, पंक्तियां ४-५

इन पंक्तियों का अर्थ यों किया गया है—‘ऐसी कटी हुई जेहुरी (?) [सदृश] वे हैं ! उनकी पिंडलियां स्वाभाविक रीति से शोभित हैं।’

प्रस्तावित अर्थ—इन पंक्तियों में आए ‘जेहुरी’ शब्द का अर्थ डा० गुप्त संदिग्ध मानते हैं। हमारी समझ में ‘जेहुरी’ का अर्थ यहाँ एक पादाभूषण विशेष है, जिसे पाजेव भी कहते हैं। तदनुसार अर्थ यों होना चाहिए—

‘ति लग्गि [तीन लड़ीवाली; तिहरी] कटी हुई [बनी हुई; सुंदर]
जेहरी (पाजेव) उनकी पिंडलियों में सहज शोभित हो रही है ।’

जेहरी या जेहुरी का नारी-आभूषण-वर्णन के प्रसंग में बहुधा उल्लेख हुआ है । यथा—

(१) पग जेहरि विछियन की भूमकनि ।—सूर

(२) पग जेहरि जंजीरनि जकखो ।—वही

(३) जेहरि जयकंकन कलित केसवदास सुजान ।

माला साला सुभ सभी सीमा सम सोपान ॥—केशव

यहाँ पिंडलियों का वर्णन चल रहा है अतः ‘जेहुरी’ शब्द को पाजेव का वाचक मानना संगत है । ‘तिलग्ग’ का अर्थ ‘तिहरी’; ‘त्रिविध लगी हुई’ या ‘तीन लड़ीवाली है’ —तीन लर; तिलर या तिलग्ग ।

१७. जु नषपइ मोर तंबोर सुढार ।—पृष्ठ १०१, पद्य २५, पंक्ति ३

डा० गुप्त का अर्थ है—‘मोर (श्वपच, चांडाल) जब तांबूल की ढार (पीक) फेंकता है ।’

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति में आए ‘मोर’ शब्द का अर्थ चांडाल निराधार है । यह ठीक है कि मोर एक अंत्यज वर्ग का भी वाचक है जिससे चंद्रगुप्त मौर्य का संबंध भी कुछ विद्वान् जोड़ते हैं, तथापि यहाँ मोर शब्द का अर्थ हमारी समझ में ‘मोरी’ या ‘नाली’ है ।

प्रसंग यहाँ पट्टनपुर के वैभव का चल रहा है । कवि बताना चाहता है कि नागरजन जब तांबूल का रस मोरी में थूकते हैं तो उसकी अतिशयता के कारण कीचड़ हो जाता है । अर्थात् वे भरपूर तांबूल सेवन करते हैं ।

यहाँ मोर का अर्थ श्वपच या चांडाल मानने में आपत्ति यह है कि तांबूल का सेवन श्वपचों या चांडालों का नहीं, अपितु शिष्ट एवं सुसंस्कृत नागरजनों का लक्षण है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक ‘प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद’ में इसका प्राचीन नाम ‘नागवल्लि’ कहा है जो नागरजनों एवं नागरिकाओं का ही शृंगार माना गया है—

एकैव वल्लिपु विराजति नागवल्लि ।

या नागरीवदन चंद्रमलंकरोति ॥

महाकवि माघ ने स्वच्छ जल से धुले अंग, तांबूलद्युति से जगमगाते होंठ और महीन निर्मल हलकी-सी साड़ को ही तो विलासिनियों का वास्तविक शृंगार माना है—

स्वच्छाग्भः स्तपनविधौ तमङ्गमोष्ठस्ताम्बूलद्युतिविशदो विलासिनाम् ॥

नैषध में बताया गया है कि राजा भीम ने अपने जामाता को सुंदर मणिकुचित पीकदान दहेज में दिया था (१६-२७) जैसा कि राजस्थान के राजकुलों में आज भी दिया जाता है। अतः तांबूलपेवन के पीछे जो परंपराएँ हैं वे आभिजात्य अथवा कुलीन वर्ग की ही हैं; श्वपच अथवा चांडाल वर्ग की नहीं। फलतः डा० गुप्त द्वारा मान्य अर्थ हमें असंगत प्रतीत होता है। रहा ‘मोरी’ शब्द के तत्कालीन प्रयोग का प्रश्न तो रासोकार से भी पहले अमीर खुसरो इसका प्रयोग कर चुके हैं—

चार महीने बहुत चले, और महीने थोरी।

अमीर खुसरो यों कहे तू बता पहली मोरी ॥ उत्तर मोरी

चूँकि पान की पीक मोरी में ही थूकी जाती है अतः वैसे भी ‘मोर’ का अर्थ नाली या मोरी संगत प्रतीत होता है।

१८. कुसुंम सार उड्ड नट्टरी। — पृष्ठ १३१, पद्य ३८, पंक्ति १०

डा० गुप्त का अर्थ है—‘कुसुंमी साड़ी पहने हुए वे ओढ़ (उड़ीसा के) नृत्य करने लगी।’

प्रस्तावित अर्थ—यहाँ ‘उड्ड’ का अर्थ ‘उड़ीसा के नृत्य’ करना मात्र क्लिष्ट कल्पना है। गुप्त जी यदि ‘उड्ड’ का अर्थ ‘उड़ीसा के नृत्य’ करते हैं तो उनके द्वारा प्रयुक्त ‘पहने हुए’ का वाचक शब्द कौनसा है क्योंकि पाठ में तो इस क्रिया का वाचकत्व किसी शब्द से होता नहीं। दूसरे ‘ओढ़ नृत्य’ भला नृत्य का कौनसा भेद है ? हमें तो ‘उड्ड’ का सीधा सादा अर्थ ‘ओढ़ कर’ या ‘पहन कर’ ही संगत लगता है। अर्थात्—‘कुसुंमी साड़ी ओढ़कर (पहन कर) वे नृत्य करने लगीं।’

१९. अंभोरुह माणंद (मानन ?) जोय लरिसो

(लुरिसो ?) डाडिम लो बीयलो। — पृष्ठ ११०, पद्य ७, पंक्ति १

इस पंक्ति में आए ‘लरिसो’ का संभावित रूपांतर ‘लुरिसो’ (लौटती है) मानकर डा० माताप्रसाद गुप्त ने अर्थ किया है—‘जिसके अंभोरुह (कमल) सदृश आनन (?) पर ज्योति लौटती रहती है, [जिसके दाँत] दाडिम के बीज के सदृश हैं।’

प्रस्तावित अर्थ इस पंक्ति में शब्दों की खासी अच्छी खबर ली गई है। ‘माणंद’ में उच्चारणसाम्य के आधार पर ‘आनन’ एवं ‘लरिसो’ में ‘लुरिसो ?’ की उद्भावना कर एक विचित्र स्थिति उत्पन्न की गई है। परंतु शब्द जब स्वयं उद्दिष्ट अर्थ की व्यंजना में समर्थ हैं तो यह खींचतान अनावश्यक है।

५ (७०-१)

वस्तुतः 'माण्ड' शब्द का अर्थ यहाँ सटश या समान है जिसका मूल रूप है 'मानिंद' (का०)। राजस्थानी में इसका विकृत रूप 'माण्ड' अति प्रचलित है। इसी प्रकार 'लरिसो' का अर्थ 'लड़ या लड़ सटश' है जो यहाँ दंतावलि का वाचक है। तदनुसार पूरी पंक्ति का अर्थ यों किया जा सकता है—

‘उसकी [मुख-] ज्योति कमल के मानिंद है एवं लड़ [दंतपंक्ति] जो है (लरि सो) वह दाढ़िम के दानों सी [सुंदर] है।’

डा० गुप्त ने अपनी अर्थप्रक्रिया में शब्दों की अनावश्यक तोड़-मरोड़ की है (‘माण्ड’ = मानन ? = आनन ? एवं ‘लरिसो’ = लुरिसो = लौटती है ?) ।

२०. भय टामंक दिस्सइ न दिसि बहु पणपर भहराउ ।

—पृष्ठ १४३, पद्य ४, पंक्ति १

उपपुक्त पंक्ति में आए ‘टामंक’ शब्द का अर्थ डा० गुप्त ने ‘धुंधलाहट’ किया है जो निराधार है ।

प्रस्तावित अर्थ—संभवतः इस पंक्ति में आई ‘दिस्सइ न दिसि’ शब्दावली से डा० गुप्त ने ‘टामंक’ का अर्थ ‘धुंधलाहट’ होने का अनुमान लगा लिया और यों अर्थ कर दिया—‘ऐसी टामंक (धुंधलाहट) हुई कि दिशाएँ न दिखती थीं ।’ परंतु दिशाएँ न दिखने का कारण अश्वारोही सेना का जमाव है ।

वस्तुतः टामंक प्राचीन राजस्थानी का एक बहुव्यवहृत शब्द है जिसका अर्थ है नगाड़ों या युद्धवाद्यों का घोष । इसके प्रचुर उदाहरण दिए जा सकते हैं । यथा —

(१) घुग टामंक सं घोर घण, थिर चर थर सल्ला ।^१

(२) दादुर मोर टक्कक घण, बीजलड़ी तरवारि ।

—ढोला मारू रा दूहा

(३) टमंकि तबल्ल नफेरिय टीप ।

जूंझाऊ व्रंवक वाज सजीप ॥

—राजरूपक, पृष्ठ २०३

यही नहीं स्वयं कवि चंद ने भी इसका इसी अर्थ में अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ श्री मोतीलाल मेनारिया द्वारा संपादित ‘डिगल में वीररस’ नामक पुस्तक में चंद विरचित रासो के दिए गए ‘धग्घर नदी का युद्ध’ शीर्षक उद्धरण से भी इसी अर्थ की पुष्टि होती है—

१. ‘माताजी री वचनिका’, पृष्ठ ७२; ‘परंपरा’, जोधपुर ।

बंधेव फौज लोहान बर, दुहूँ फौज टामंक किय ॥५०॥

—डिगल में वीर रस, पृष्ठ ८३

पंक्ति के उत्तरार्द्ध का संपादकीय अर्थ है—‘दोनों सेनाओं ने नगाड़े बजवाए ।’

अतः डा० गुप्त का अर्थ ‘धुंधलाहट’ भ्रांत है ।

२१. तन तुरंग तिलु ति तिलु कर भयउ कन्ह मन भिष्प ।

—पृष्ठ २२७, पद्य १८, पंक्ति २

डा० गुप्त ने इस पंक्ति में आए ‘भिष्प’ शब्द की संभावित व्युत्पत्ति ‘भिच्चा’ (आकांक्षा) से मानते हुए अर्थ किया है—‘अपने शरीर और तुरंग (घोड़े) को [कटाकर] तिल तिल करने के लिये कन्ह के मन भिच्चा, आकांक्षा (?) हुई ।’

प्रस्तावित अर्थ—‘भिष्प’ शब्द का आशय वही है जो गुप्तजी ने बताया है अर्थात् आकांक्षा, इच्छा । परंतु उसका मूल ‘भिच्चा > भीख’ न मानकर ‘बुभुच्चा > भूख’ मानना क्या अधिक संगत न होगा ? अर्थात् ‘तिल तिल कट मरने की कन्ह के मन में भूख हुई ।’ भिष्प < भूख < बुभुच्चा = आकांक्षा; तीव्रेच्छा) । ‘भिच्चा’ शब्द की अपेक्षा ‘भूख’ आकांक्षा के अर्थ के अधिक निकट है । ‘भिच्चा’ से आकांक्षा के अर्थ की कोई व्यंजना नहीं होती ।

२२. तव सु भई परतखिख अरीत अरीत कहत कह ।

—पृष्ठ २३०, पद्य २४, पंक्ति ४

(प्रसंग—अल्हन के मस्तक के धराशायी होते समय उसके स्मरण करने पर महामाया (दुर्गा) प्रकट हुई । उधर उसी समय अप्सरा भी ‘अरीत अरीत’ कहती हुई साकार हुई एवं उसने अल्हन को अपनी गोद में भर लिया ।)

डा० गुप्त ने ‘अरीत अरीत’ का अर्थ ‘अरिक्त अरिक्त’ [अर्थात् अब अल्हन के आगमन से स्वर्ग की रिक्तता शेष नहीं रही]—ऐसा किया है ।

प्रस्तावित अर्थ—हमारे विचार से यहाँ ‘अरीत’ का अर्थ ‘अरिक्त’ न होकर ‘अरीति’ (अर्थात् अनुचित या रीतिविरुद्ध बात) है । भाव यह है कि कवि मान्यतानुसार युद्ध में वीरगति प्राप्त करनेवाले योद्धा का वरण करने के हेतु स्वर्ग में अप्सराएं आकुल रहती हैं । वे अहमहमिका से उसके गले में वरमाला डालती हैं । ऐसे वीरगति प्राप्त योद्धा पर वे एक प्रकार से अपना अधिकार समझती हैं । यहाँ जब अल्हन का शिर निपतित हुआ तो उसके स्मरण करने से महामाया (देवी) हर्षसूचक हुंकार करती हुई प्रकट हुई । देवी के इस आकस्मिक आविर्भाव से अप्सरा को संदेह हुआ कि कहीं वह अल्हन के मस्तक

को, जो उसका प्राप्य है, अपनी मुंडमाला के लिये न ले ले। अतः वह देवी को 'अरीति अरीति' (यह रीति विरुद्ध है, यह रीति विरुद्ध हैं) कह कर निषेध करती हुई अमृतकलश सहित प्रकट हुई एवं उस वीर को स्वयं वरण करने के हेतु अपने क्रोध में भर लिया।

उपर्युक्त भावसंदर्भ में 'अरीति' का अर्थ 'रीतिविरुद्ध' ही संगत प्रतीत होता है जिसके पीछे वीरोत्सर्ग के प्रेरक मध्ययुगीन विश्वास की एक उदात्त परंपरा है। युद्ध में धराशायी होते ही वीर का अप्सराएं कितनी तत्परता से वरण करती हैं, इस भाव का यह अन्य दूहा देखिए—

कंत कहंता सहगमण कीधां रहबौ साथ।

छोड़ो अच्छर छेहड़ो, सो धण भालै हाथ ॥

—वीर सतसई, पृष्ठ ३७

२३. सेस सीसु कंपियउ दाड डुल्लिय भुवि भारह।

—पृष्ठ २३८, पद्य २४, पंक्ति ४

डा० गुप्त ने इस पंक्ति का अर्थ यों किया है—'शेष का शिर काँप गया और उनकी डाढ़ भूमि के भार से डोल गई।'।

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति में आए 'दाड डुल्लिय' का डा० गुप्त ने शेष से संबंध मानकर अर्थ किया है जैसाकि उनके द्वारा शेषनाग के लिये प्रयुक्त सर्वनाम 'उनकी' से प्रकट है। परंतु, 'दाड डुल्लिय' वस्तुतः वाराह के लिये आया है जिनकी डाढ़ पर भी पौराणिक मतानुसार पृथ्वी की अवस्थिति मानी गई है। यहाँ यद्यपि संज्ञा (वाराह) लुप्त है तथापि क्रिया स्पष्टतः उसी का वाचकत्व करती है। अतः इस पंक्ति का अर्थ यों होना चाहिए—'शेष का शिर काँप गया एवं [वाराह की] डाढ़ भूमि के भार से डोल गई।'। पृथ्वी शेष के फन और वाराह की डाढ़ पर स्थित मानी गई है। अतः यहाँ 'शेष की डाढ़ डोल गई'—ऐसा अर्थ अयुक्त है।

इस प्रकार का वर्णन कवि-परंपरा-पुष्ट भी है। उदाहरणार्थ धनुर्भंग के प्रसंग में महाकवि तुलसी ने भी ऐसा ही वर्णन किया है—

'चिक्करहि दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।'।

—रामचरितमानस

२४. इह विधि विलसि विलास असार सुमार किअ।

पृष्ठ २४५, पद्य ८, पंक्ति १

गुप्तजी का अर्थ है—'इस प्रकार विलासों को विलस कर [पृथ्वीराज ने] सुमार (सामर्थ्य-शक्ति) को भी असार कर दिया।'।

प्रस्तावित अर्थ - डा० गुप्त का उक्त अर्थ हमें निराधार प्रतीत होता है। होना यों चाहिए—‘इस प्रकार विलासों को विलस कर [पृथ्वीराज ने] इस असार (संसार) को भी सुसार (सारयुक्त) कर दिया।’ अर्थात् नाना भोग-विलासों का यथेच्छ उपभोग कर उसने मानों इस सांसारिक असारता में भी अपने अस्तित्व की सार्थकता का अनुभव कर लिया। अर्थात् अनेक ऐश्वर्यों का उपभोग कर अपने जीवन को सफल, सारयुक्त या सुखद बना लिया।

डा० गुप्त के अर्थ ‘सुसार को भी असार कर दिया’ से कोई भाव स्पष्ट नहीं होता। यहाँ प्रसंग पृथ्वीराज के विलास का है, शौर्यवर्णन का नहीं। अतः ‘सामर्थ्य-शक्ति को असार कर देने’ का अर्थ भ्रांत है।

२५. तमचूरन जूरण किरण त प्रगटि दिसांन दिसांन।

—पृष्ठ ३०५, पद्य १८, पंक्ति २

(प्रसंग—प्रभात का वर्णन है) डा० गुप्त का अर्थ है—‘ताम्रचूड़ों को कष्ट देनेवाली [सूर्य की] किरणें दिशाओं में प्रकट हुईं।’

प्रस्तावित अर्थ—डा० गुप्त का अर्थ असंगत है। प्रातःकालीन सूर्य की किरणें ताम्रचूड़ों को कष्ट देनेवाली होती हैं, यह एक नई बात है क्योंकि अब तक तो प्रभातवर्णन के प्रसंग में हमने ताम्रचूड़ों की उल्लसित कंठध्वनि के ही वर्णन पढ़े हैं। महाकवि सूर ने जो यह लिखा है—

आज भोर तमचूर की रोल।

गोकुल में आनंद होत है, मंगल धुनि महराने टोल।

क्या यह अस्वाभाविक है? और भी अनेकानेक कवियों ने प्रभातवर्णन के प्रसंग में ताम्रचूड़ों की सुखद शब्दध्वनि का जो चित्रण किया है क्या वह यथातथ्य नहीं?

हमारे विचार से इस पंक्ति के दो अर्थ संभव हैं—

तम (अंधकार) को चूर्ण और वस्त (जूरण) करने वाली (सूर्य की) किरणें दिशि दिशि में प्रकट हो गईं।

अथवा

[प्रभात के लिये] भुरते हुए (आकुल) ताम्रचूड़ों को [हर्षित करने वाली] [सूर्य की] किरणें दिशि दिशि में प्रकट हुईं।

परंतु सूर्यकिरणों से ताम्रचूड़ों के कष्ट पाने का अर्थ तो असंगत ही लगता है।

२६. मइं दियउ दान चिंता न करि जा होइ चंडु सद्दइ निरति । .

—पृष्ठ ३२२, पद्य ४२, पंक्ति ५

डा० गुप्त ने इस पंक्ति में प्रयुक्त 'निरति' का अर्थ 'मग्नता, तल्लीनता' किया है ।

प्रस्तावित अर्थ—डा० गुप्त द्वारा गृहीत अर्थ यद्यपि संगत है, तथापि प्राचीन राजस्थानी साहित्य में 'निरति' शब्द एक विशिष्टार्थ में प्रयुक्त हुआ है जो संतसाहित्य में व्यवहृत 'सुरति और निरति' के अर्थ से भी भिन्न है । वह विशिष्टार्थ है—खबर, सुध या सूचना । उदाहरणार्थ—

(१) भद्रक जीव भोलउ घणुं निरति नहीं नर-नारि ।—

—समयसुंदर, वल्कल चीरी चौपई

(२) आयो नहीं सुत पथि, निरति करउ सब नगर मई ।

—समयसुंदर, पुन्यसार चरित्र चौपई

(३) राजा, कउ जण पाठवइ, ढोलउ निरति न होइ ।

—ढोलामारू रा दूहा

इस दृष्टि से उपर्युक्त पंक्ति में प्रयुक्त 'निरति' शब्द का अर्थ सूचना मानते हुए यों भी अर्थ किया जा सकता है—

‘मैंने [तेरी ओर से बिना तेरे कहे ही वचन का] दान दे दिया है, तू चिंता न कर, चंद के शब्दों (कथन) से तुझे यह सूचित हो जाए ।’

यहाँ केवल सरसरी दृष्टि से ग्रंथ के अवलोकन के अनंतर कुछ शब्दार्थों के संबंध में उत्पन्न अपने विचारों को मैंने विद्वज्जनों के समक्ष निवेदन किया है । सच तो यह है कि डा० माताप्रसाद गुप्त के उक्त ग्रंथ ने रासो के पाठालोचन तथा तत्संबद्ध समस्याओं को सुलभने की अपेक्षा कहीं कहीं और अधिक उलझा दिया है । पाठालोचन वैज्ञानिक होकर भी अंतिम रूप से निर्विवाद नहीं हो सका है । डा० गुप्त द्वारा संपादित 'रासउ' को पढ़कर पाठक की यह धारणा बने बिना नहीं रहती । तथापि यह शिकायत तो थोड़ी बहुत सभी ग्रंथों के साथ बनी रहती है एवं प्रस्तुत ग्रंथ का महत्व इससे कुछ कम नहीं होता, जो अपने आप में एक स्तुत्य एवं अभिनंदनीय प्रयास है ।



महाकवि भूषण का कालनिर्णय

[काशीनाथ केलकर]

महाकवि भूषण की प्राप्त सभी रचनाएँ हिंदी में मिलती हैं। अतः हिंदी साहित्य के विद्वानों ने इनका अध्ययन किया। क्योंकि महाराष्ट्र के ललाम छत्रपति शिवाजी की स्तुति में कवि भूषण ने काव्यरचना की इस लिये महाराष्ट्र के इतिहास-वेत्ता साहित्यप्रेमियों के अध्ययन का वह एक विषय है।

रीतिकालीन शृंगार-रस-प्रधान काव्यरचना से पृथक् ओजपूर्ण वीररस की 'अलंकारवादी' काव्यरचना भूषण की महत्ता सिद्ध करने में पर्याप्त है। दुर्भाग्यवश भूषण का असली नाम, जन्मकाल, रचनाकाल, जीवनचरित्र, मृत्यु इत्यादि के संबंध में प्रामाणिक आधारों के अभाव में किंवदंतियाँ प्रसारित हुईं और साहित्य उन्हें ही प्रामाणिक मानने लगा है।

प्रस्तुत निबंध का उद्देश्य भूषण और उनकी रचना—शिवराजभूषण—के कालनिर्णय का विवेचन करना है। इसके लिये प्राप्त प्रकाशित ग्रंथों का ही आधार लिया गया है।

भूषण के असली नाम का उल्लेख उनकी किसी भी प्राप्त रचना में अप्राप्त है अतः उसके लिये अनुमान ही किए गए हैं। प्रमुख अनुमान ये हैं—

(क) श्री महेंद्रपाल सिंह के कथनानुसार भूषण का असली नाम पतिराम था।^१

(ख) श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित का मत है कि भूषण का नाम मनिराम था।^२

(ग) श्री दीक्षित ने अन्य एक स्थान पर लिखा है कि भूषण का असली नाम कनौज था।^३

१. विशाल भारत, अगस्त १९३० ई०।

२. महाकवि भूषण—भगीरथप्रसाद दीक्षित (द्वि० सं० १९६३) पृ० ३३।

३. वही, पृ० ३२।

(घ) कैप्टेन शूरवीर सिंह पवार 'अलंकारप्रकाश' के आधार पर बताते हैं कि भूषण का असली नाम 'मुरलीधर' था ।^४ किंतु अलंकारप्रकाश के रचयिता 'मुरलीधर कवि भूषण' तथा 'शिवराजभूषण' के रचयिता कवि भूषण की रचनाओं का अध्ययन करके विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि ये दोनों कवि विभिन्न हैं ।

(ङ) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र के कथनानुसार 'भूषण का असली नाम घनश्याम था' ।^५

उपर्युक्त कथनों का निष्कर्ष इतना ही निकलता है — 'इनका (भूषण का) असल नाम क्या था इसका पता नहीं !'^६

कवि भूषण के बारे में दूसरा विवाद्य प्रश्न भूषण के भाई और उनके नाम के संबंध में है । अधिकतर विद्वान मानते हैं कि भूषण के और तीन भाई थे । इनके नाम चिंतामणि, मतिराम और जटाशंकर थे । जटाशंकर विशेष प्रसिद्ध नहीं थे अतः भूषण के साथ अन्य दो भाइयों के ही नाम लिए जाते हैं । हिंदी के अनेक ग्रंथों में अनेकानेक विद्वानों ने इस मत को स्वीकार किया है कि चिंतामणि, भूषण और मतिराम सहोदर भाई थे । चिंतामणि और भूषण के सहोदर बंधु होने में किसी प्रकार की मतभिन्नता नहीं, किंतु भूषण और मतिराम के सहोदर भाई होने में मतैक्य नहीं है । भूषण और मतिराम सहोदर भाई नहीं थे, इस मत का प्रतिपादन करते समय भूषण और मतिराम द्वारा दिए गए वंशपरिचय का आधार लिया जाता है ।

भूषण का वंश परिचय—

द्विज कनौज कुल कश्यपी रतनाकर सुत धीर ।
बसंत त्रिविक्रमपुर नगर तरनि तनूजा तीर ॥^७

मतिराम—

तिरपाठी बनपुर बलैं, बत्सगोत्र सुनि रोह ।
त्रिबुध चक्रमणि पुत्र तंह गिरिधर गिरिधर देह ॥
...तिनके तनय उदार मति विश्वनाथ हुअ नाम ।
...तासु पुत्र मतिराम कवि निज मति के अनुसार ॥^७

४. अलंकारप्रकाश—शूरवीरसिंह पवार, प्रस्तावना, पृ० २ ।

५. भूषण—विश्वनाथप्रसाद मिश्र (प्र० सं०, संवत् २०१०), पृ० १०३ ।

६. हिंदी साहित्य का इतिहास (नवम संस्करण), पृ० २५४ ।

७. महाकवि भूषण पृ० ३४ ।

इससे स्पष्ट है कि दोनों के गोत्र भिन्न थे और पिता के नाम भी भिन्न थे। अतः ये दोनों सहोदर भाई नहीं थे। डा० भगीरथ मिश्र ने 'मतिराम नामधारी दो कवि' नाम के अपने एक लेख में चर्चा करते हुए कतिपय आधारों से यह सिद्ध किया है कि मतिराम नाम के दो भिन्न कवि थे और उनमें से एक भूषण का सहोदर भाई था।^८ इससे यह स्पष्ट होता है कि चिंतामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर ये चारों सहोदर भाई थे।

भूषण की निम्नलिखित रचनाएँ मानी जाती है — १ - शिवराजभूषण, २ - शिवावावनी, ३ - छत्रसालदशक, ४ - फुटकर रचनाएँ, ५ - भूषण उल्लास, ६ - दूषण उल्लास और ७ - भूषणहजारा। इन रचनाओं में प्रथम चार प्राप्त और प्रकाशित हैं और अंतिम तीन अप्राप्त हैं।

प्रस्तुत निबंध का मुख्य विषय 'कवि भूषण छत्रपति शिवाजी के समकालीन थे' हिंदी साहित्य में एक विवादास्पद विषय बना हुआ है। जब तक विश्वसनीय आधार उपलब्ध नहीं होता तब तक आज तक के प्रकाशित ग्रंथों के आधारों पर ही अवलंबित रहकर निष्कर्ष निकालना पड़ता है।

कवि भूषण शिवाजी के समकालीन नहीं थे, ऐसा मत प्रतिपादन करनेवालों में श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित मुख्य हैं। श्री दीक्षित ने 'भूषण और मतिराम' लेख तथा 'भूषण विमर्ष' और 'महाकवि भूषण' नामक ग्रंथों में अपना निम्नलिखित मत स्पष्ट किया है—'महाकवि भूषण शिवाजी के दरबार में कदापि नहीं थे। उनका जन्म शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् ही हुआ था। भूषण ने सितारा में राजा साहू के दरबार में रहकर शिवराजभूषण की रचना की।'

श्री दीक्षित के मत का प्रधान आधार शिवसिंह सरोज^९ ग्रंथ है। इस ग्रंथ में भूषण के विषय में लिखा है—'भूषण त्रिपाठी टिकमापुर जिले कानपुर सं० १७३८'। ... ये महाराज प्रथम राजा छत्रशाल परना नरेश के इहाँ छः महिने तक रहे तेहि पीछे महाराज शिवराज सुलंकी सितारागढ़वाले के इहाँ जाय बड़ा मान पाया और जब यह कवित्त 'इंद्रजिमि जंभ पर' भूषण ने पढ़ा तब शिवराज ने पाँच हाथी और २५ हजार रुपया इनाम दिया इसी प्रकार से भूषण ने बहुत रुपया हाथी घोड़ा पालकी इत्यादि दान में पाये।'^{१०}

८. मतिराम नामधारी दो कवि—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ४।

९. शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर, संवत् १९३४।

१०. वही, पृ० ४६७।

६ (७०-१)

उपर्युक्त ग्रंथ और उनके कथन के आधार पर श्री दीक्षित कवि भूषण का जन्मसंवत् १७३८ (सन् १६८१) मानते हैं। श्री दीक्षित के आधारभूत ग्रंथ तथा उनके मत के संबंध में विवेचन आवश्यक है। 'शिवसिंह सरोज' ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १६३४ (सन् १८७७) है। ग्रंथ के लेखक का कथन ध्यान देने योग्य है। ग्रंथ की भूमिका में लिखा गया है — 'जिन कवि लोगों के ग्रंथ हमने पाये हैं उनके सन् संवत् बहुत ठीक ठीक लिखे हैं और जिनके ग्रंथ नहीं मिले उनके सन् संवत् हमने अटककर से लिख दिये हैं।'^{११} लेखक ने अन्यत्र लिखा है — 'इनके (भूषण के) बनाये हुए ग्रंथ शिवराज भूषण १ भूषण हजार २ भूषण उल्लास ३ भूषण उल्लास ४ ये चार ग्रंथ सुने जाते हैं।'^{१२} उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि 'शिवसिंह सरोज' के रचनाकाल संवत् १६३४ तक शिवराजभूषण ग्रंथ लेखक को नहीं मिला था। किंतु इस एक ग्रंथ में ही कवि भूषण ने अपने ग्रंथ का रचनाकाल प्रसिद्ध किया है। फिर शिवसिंह सेंगरजी ने किस आधार पर भूषण का जन्मकाल संवत् १७३८ लिखा है। निश्चय ही यह अंदाज या अटक है। इतिहास अंदाज को स्वीकार नहीं कर सकता अतः शिवसिंहसरोज में लिखित भूषण का जन्मकाल प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

श्री दीक्षित जी के मत का दूसरा आधार 'शिवराज भूषण' का छंद ३८० है—

सम सत्रह सै तीस पर सुचि वदि तेरसि भान ।

भूषण सिव भूषण कियो पढ़ियो सकल सुजान ॥

उपर्युक्त दोहे में 'सत्रह सौ तीस पर' और 'भूषण सिव भूषण कियो' इन शब्द समूहों का अर्थ और श्लेषार्थ श्री दीक्षित जी ने इस प्रकार बताया है—

(अ) 'सत्रह सै तीस पर' में आए 'पर' शब्द का अर्थ अनंतर या पश्चात् लिया, 'तीस' शब्द में 'सै' को जोड़कर सैतीस बनाया और इस प्रकार 'सत्रह सै तीस पर' का अर्थ संवत् १७३७ के पश्चात् सं० १७३८ लिया। इसी विवेचन के प्रसंग में 'भूषण सिव भूषण कियो' का अर्थ यों किया है - देवताओं के भूषण शिवजी ने भूषण को उत्पन्न किया।

(ब) दूसरी बार 'सत्रह सै तीस पर' में स्थित 'पर' का अर्थ 'उलटा' लिया अर्थात् ३७ का उलटा ७३ लेकर 'सत्रह सैतीस पर' का अर्थ १७७३ स्वीकार

११. वही, भूमिका, पृ० २।

१२. वही, पृ० ४६८।

किया। इसी संदर्भ में 'भूषण शिव भूषण कियो' का अर्थ 'भूषण ने शिवराज-भूषण की रचना की' लिया है। इस प्रतिपादन के अनुसार यहाँ सिद्ध किया— संवत् १७३८ में भूषण का जन्म हुआ और संवत् १७७३ में भूषण ने शिवराज-भूषण की रचना की।

इस प्रतिपादन से निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं। १ - यदि 'पर' का अर्थ पश्चात् है तो एक ही साल पश्चात् लेने का क्या कारण हो सकता है? २ - शिवजी का उल्लेख निर्माता, उत्पन्न करनेवाले के रूप में नहीं मिलता; संहारकर्ता के रूप में ही उनका उल्लेख किया गया है। ३ - यदि 'पर' का अर्थ उलटा है तो सिर्फ ३७ का उलटा ७३ ही क्यों लिया गया; पूर्ण अंक का उलटा १७३७ = ७३७१ क्यों नहीं। वास्तविक रीति से 'अंकानाम् वामतो गतिः' नियम प्रचलित है। फिर श्री दीक्षित जी ने अधूरा नियम क्यों अपनाया? ऐसा लगता है कि 'भूषण शिवकालीन नहीं थे' इस मत को सिद्धांत बनाकर उसी की तुष्टि करने के लिये श्री दीक्षित जी ने उपर्युक्त दोहे से अर्थ, श्लेषार्थ और अर्थोत्तर निकाला है।

श्री दीक्षित ने अपनी इस १९६३ की पुस्तक में जिस दोहे को प्रामाणिक माना है उसी दोहे के संबंध में उनका एक आश्चर्यकारी कथन द्रष्टव्य है। 'मतिराम और भूषण' शीर्षक लेख में आपने लिखा है — 'उपर्युक्त कविता इतनी निकृष्ट श्रेणी की है कि जिसे साहित्य का कुछ भी ज्ञान है वह तुरंत कह देगा कि यह कविता कदापि महाकवि भूषण की रची नहीं है... यह कविता किसी ने पीछे से मिला दी है।' श्री दीक्षित अपनी इसी १९६३ की पुस्तक में इसी दोहे को प्रामाणिक मानते हैं। न जाने क्यों साहित्यिक अज्ञता का अपना ही अभियोग स्वीकार कर वे इस दोहे को प्रामाणिक मानने लगे।

शिवसिंहसरोज का आधार देते समय 'शिवराज' नाम का दुबारा किया हुआ उल्लेख दीक्षित जी ने कुशलता से टाल दिया है ताकि अपने ही आधार से अपना खंडन न हो।

इन बातों से स्पष्ट है कि भूषण को शिवकालीन न माननेवाले स्व० शिवसिंह सेंगर तथा श्री दीक्षित के प्रमाण आधारहीन से लक्षित होते हैं।

दूसरा पक्ष भूषण को शिवकालीन मानता है। इस पक्ष का समर्थन करने-वाले अनेक विद्वान हैं। यहाँ कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख करना पर्याप्त होगा—

(क) 'बंगवासी' शिवाबावनी के आधार पर चितामणि का जन्म संवत् १६५७ (ई० १६०१) और कवि भूषण का जन्म संवत् १६७१ (ई० १६७३) प्रतीत होता है ।

(ख) भूषणग्रंथावली के संपादक मिश्रबंधुओं का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है । 'शिवसिंह सरोज' में भूषणजी का जन्मकाल संवत् १७३८ विक्रमी लिखा है परंतु यह नितांत अशुद्ध है... शिवसिंह सरोज में सन् संवत् का बड़ा गड़बड़ रहता है । शिवसिंह (सेंगरजी) भूषण महाराज का शिवाजी एवं छत्रशाल के दरबारों में रहना मानते हैं पर शिवाजी (ई० सन् १६८०) संवत् १७३७ में गोलोकवासी हुए थे सो क्या भूषण जी अपने जन्म के डेढ़ साल पहले ही शिवाजी के यहाँ पहुँच गए ?^{१४}

हिंदी के ख्यातनाम विद्वान् तथा आलोचक कवि भूषण को शिवाजी का समकालीन मानते हैं और उनका मत स्वीकार करने में कोई संदेह नहीं प्रतीत होता ।

एक अन्य महत्वपूर्ण आधार का विवेचन यहाँ किया जाना जरूरी है । वह आधार अंतःसाक्ष्य का है । इसके अंतर्गत कवि भूषण का आत्म उल्लेख, भाषागत आधार तथा ऐतिहासिक प्रसंग और घटनाएँ हैं ।

(अ) व्यक्तिगत आधार

(क) देसन देसन ते गुनी आवत जाचन ताहि ।

तिनमें आयो एक कवि भूपन कहियतु जाहि ॥^{१५}

देश विदेश से याचना करने के लिये गुणीजन आते हैं उनमें भूषण नाम का एक कवि भी आया । राजा शिवाजी के दरबार में स्वयं उपस्थित रहने का स्पष्ट उल्लेख भूषण ने किया है । यदि भूषण परवर्ती कालीन था तो इस प्रकार भूठी बात लिखने का इस महाकवि का क्या उद्देश्य हो सकता है ।

(ख) पीरी पीरी हुन्ने तुम देत हो मँगाय हमें ।

सुवरन हम सों परखि करि लेत हो ॥^{१६}

इनमें 'प्रयुक्त मँगाय हमें', 'हम सों परखि' शब्द अन्य कविजनों के साथ

१४. भूषण ग्रंथावलि—मिश्रबंधु, पृ० ७ ।

१५. संपूर्ण भूषण—रा० गो० काटे, ई० १९३०, शिवराजभूषण, छंद २५ ।

१६. वही, छंद १७५ ।

भूषण का उपस्थित होना सूचित करते हैं। निश्चय ही भूषण का राजा शिवाजी से साक्षात्कार हुआ और यह भूषण का प्रत्यक्ष कथन है।

(ग) एक स्थान पर कवि भूषण ने अपना व्यक्तिगत दुःख प्रकट किया है—

और बाभनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ ॥^{१७}

अन्य ब्राह्मणों को देखकर सुदामा की याद करते हो (प्रसन्न होते हो) और मुझे देखकर भृगु ऋषि की याद क्यों आती है (अप्रसन्न क्यों होते हो)।

दोहे में शिवाजी की नाराजगी का उल्लेख है। क्या शिवाजी की नाराजगी उनकी मृत्यु के पश्चात् संभव है ?

(घ) शिवराजभूषण का अंतिम दोहा इस प्रकार है—

पुहुमि पानि रवि ससि पवन, जब लौं रहै अकास ।
सिवसरजा तव लौं जियो भूषण सुजस प्रकास ॥^{१८}

इसमें स्वस्तिकामना करते हुए स्पष्ट रूप से कहा गया है—सिवसरजा तव लौं जियो अर्थात् सिवसरजा जीवित रहे, उनकी कीर्ति नहीं। अतः निश्चय ही यह दोहा शिवाजी के जीवनकाल में ही लिखा गया होगा।

(आ) भाषागत आधार

(प) छत्रपति शिवाजी के सामने उपस्थित होकर उनको संबोधन करके 'सिवराज' शब्द का प्रयोग शिवराजभूषण के अनेक छंदों में मिलता है। उदाहरणार्थ दोहा ७२, १०४, १७३, १६३, १६५ इत्यादि।

(फ) शिवाजी के समक्ष उपस्थित होकर उनके साथ मानो संभाषण करते हुए मध्यम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग—

तू (१७६, १८४); तव (४७, ६५); तुम (७४, १७५); तुव (६१, ७३) इत्यादि। इस प्रकार के उदाहरण और भी दिए जा सकते हैं।

यह मध्यम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग सर्वत्र नहीं तथा अन्य पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है। अतः यह अनुमान लगाना

१७. वही, छंद ७५।

१८. वही, छंद ३८२।

अयोग्य न होगा कि जिन दोहों में शिवाजी के लिये मध्यम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग है वे दोहे शिवाजी की उपस्थिति में रचे या सुनाए गए होंगे और अन्य उनकी अनुपस्थिति में ।

(व) कुछ प्रसंगों का वर्णन करते समय वर्तमानकाल की क्रियाओं का प्रयोग मिलता है । जैसे, कहत, लंघै, छुटै, मलति है, दलति है, आइयतु है इत्यादि । इनके अलावा अवश्य ही कुछ अन्य कथन ध्यान देने योग्य हैं जैसे —

(म) बचैगा न समुहाने बहलोल खां अयाने भूषण बखाने ॥^{१९}

बहलोल खाँ तुम शिवाजी के सामने न बचोगे ।

(म) या पूना में मति टिकौ खानबहादुर आय ।

ह्याई साइसखान को दीन्हीं सिचा सजाय ॥^{२०}

खानबहादुर तुम पूना में आकर न रहो ।

(म) और (म) में घटनाओं के घटने के पूर्व के ये कथन क्या दर्शाते हैं ? यह स्पष्ट रूप से लक्षित होता है कि ये दोहे उन घटनाओं के पूर्व ही रचे गए हैं ।

(य) शिवाजी और औरंगजेब के संबंध में वर्णित एक कथन उल्लेखनीय है—

भूषण भनत डाबरे को बुद्धि है कै बाबरे न कोजै बैरु,
राबरे के बैर होत काज शिवराज के ॥^{२१}

औरंगजेब के सरदार उन्हें सलाह देते हैं—शिवाजी से बैर न कीजिए आपके बैर करने से शिवाजी का ही कार्य सधता है ।

शिवाजी से बैर करने का तथा उनका कार्य सधने का शब्दप्रयोग शिवाजी के जीवनकाल में ही शक्य है ।

(र) भूषण की रचना में प्रयुक्त कुछ विशेष शब्दों का उल्लेख अवश्य ही अध्ययन करने योग्य है ।

आजु — इस कालवाचक क्रियाविशेषण का उल्लेख शिवाजी के तथा कुछ घटनाओं के संबंध में मिलता है ।

१९. संपूर्ण भूषण, दो० १६१ ।

२०. वही, दो० ३३८ ।

२१. वही, दो० २७६ ।

आजु तुमही जगतकाज पोषत भरत है ।^{२२}

ये छंद शिवाजी के काल में ही सामयिक रचना का बोध कराते हैं ।

मंगन और रिभाए

मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिभाएँ ।^{२३}

इसमें उल्लिखित माँगने की तथा रिभाने की क्रिया व्यक्ति के जीवनकाल में ही हो सकती है ।

जीतै—क्यों जीतै सिवराज सों अब अंधक अवरंग ।^{२४}

अंधकरूपी अवरंग सिवाजी को कैसे जीतेगा ? जीतने की क्रिया निश्चय ही व्यक्ति के जीवनकाल में संभव है ।

(इ) इनके अलावा कुछ घटनाओं का जिक्र आवश्यक है । भूषण ने अपनी रचना में सालहेरी किले का तथा उसके युद्ध का उल्लेख दो० ६७, १०३, १०७, १६१, २२६, २२६, ३३१ में किया है तथा परनाला किले और तत्संबंधी घटनाओं का जिक्र १७२, २०७, २५४, ३५७ आदि दोहों में किया है । सर्वत्र यह देखा जाता है कि हाल में घटित महत्वपूर्ण घटना का बड़ा ही प्रभाव मनुष्य के मन पर होता है और उसी घटना का उल्लेख वह बार बार करता है । राजा शिवाजी ने ई० १६७२ में सालहेरी किला तथा १७७१ में परनाला किला जीत लिया था । अतः इन घटनाओं का प्रभाव भूषण की रचना में मिलता है । इससे यह अनुमान निकालना अनुचित न होगा कि शिवराजभूषण का रचनाकाल इसी समय के लगभग का ही होगा ।

(ई) श्री दीक्षित का यह कथन कवि भूषण ने शिवराजभूषण की रचना साहू के दरबार में रहकर की थी' इसलिये और भी अविश्वसनीय है कि भूषण की रचना में शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् की कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण निम्नलिखित घटनाओं का उल्लेख अप्राप्त है —

१. राजा शिवाजी का राज्याभिषेक ।
२. राजा संभाजी का पराक्रम तथा औरंगजेब द्वारा उनकी निघृण हत्या ।
३. राजाराम की मृत्यु तथा तत्कालीन महाराष्ट्र की स्थिति ।
४. दैत्यरूप औरंगजेब की मृत्यु ।

२२. वही, दो० ७५ । अन्य उदाहरण, दो० ४०, २३४, ३४१, ३४६ आदि ।

२३. वही, दो० १४० ।

२४. वही, दो० १६४ ।

उपयुक्त तथा अन्य कतिपय घटनाओं का अनुल्लेख यह स्पष्ट करता है कि शिवराजभूषण की रचना भूषण ने राजा शिवाजी के जीवनकाल में ही की थी अतः यह स्पष्टरूप से सिद्ध है कि कवि भूषण शिवाजी के समकालीन थे ।

शिवराजभूषण की दो घटनाओं का निर्देश करते तथा उन्हें अशुद्ध बतलाकर श्री दीक्षित कहते हैं कि 'यह अशुद्धता बता देती है कि महाकवि भूषण कदापि शिवाजी के दरबार नहीं थे ।' घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. शिवाजी का मिर्जा जयसिंह को ३५ किले देना ।

२. औरंगजेब के संबंध में गुसलखाने का उल्लेख ।

ये दोनों बातें अशुद्ध नहीं, शुद्ध हैं ।

पहली बात का खंडन इस प्रकार किया जाता है कि यह ३५ का अंक कहाँ से आया ? शिवाजी और जयसिंह में जो मुलह हुई थी उसमें प्रथम ३५ किले वापस करा देने की शर्त रखी गई थी किंतु वास्तव में २३ किले ही दिए गए थे । अतः यह घटना शुद्ध है ।

दूसरी घटना भी शुद्ध है क्योंकि गुसलखाने का अर्थ इतिहासकारों ने खलबतखाना, परामर्शसदन लिया है । हाल में प्रकाशित शिवाजी के आगराप्रयाण से संबंधित पुस्तक में स्पष्ट रूप से लिखा गया है—एंपरर, वाज सिटिंग इन द सेलेक्ट आडियंस हाल (दीवान-ए-खास) पापुलर्ली नोन ऐज गुसलखाना ।^{२५} क्या ये विशुद्ध घटनाएँ स्थिर करेंगी कि भूषण शिवाजी के समकालीन थे ?

'महाकवि भूषण शिवाजी के समकालीन नहीं थे' अपने इस आधारहीन मत का प्रतिपादन करते समय श्रीदीक्षित जी ने अनेक अशुद्ध तथा अनैतिहासिक बातों का जिक्र किया है । उनका खंडन करना नितांत आवश्यक है । स्थानाभाव से कुछ ही बातों का विचार यहाँ किया जा रहा है ।

१. 'भूषण की वीररस की रचना से औरंगजेब की सारी शक्ति क्षीण पड़ गई और राष्ट्र में नवजीवन का संचार हुआ ।'^{२३} परंतु श्री दीक्षित उसी पुस्तक में पृष्ठ ६५ पर लिखते हैं 'शिवराजभूषण कवि ने साहू के दरबार में रहकर

२५. शिवाजीजि विजिट टु औरंगजेब-पेट आगरा—इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस रिसर्च सीरीज नं० १, पृ० २४ ।

२६. महाकवि भूषण - दीक्षित, पृ० २५ ।

रचा था ।' इतिहास जानता है कि औरंगजेब की मृत्यु ई० १७७७ में हुई और उसके अनंतर ई० १७७८ में राजा साहू सिंहासनासीन हुए । अतः सवाल उठता है कि परवर्ती रचना का परिणाम पूर्ववर्ती व्यक्ति एवं परिस्थिति पर कैसे हो सकता है ।

३. 'भूषण ने उत्तरी भारत के नेतृत्व की बागडोर जयपुर नरेश के हाथ में दे दी ।'^{२७} न जाने यह किस इतिहास का निचोड़ है ? क्या भूषणजी कोई सम्राट् थे जो इस प्रकार की बागडोर जयपुर नरेश के हाथों देते ?

३. 'शिवा बावनी के अनेक छंदों में ऐतिहासिकता का रूप साहू के समय का है परंतु वे शिवाजी की प्रशंसा में लिखे गए हैं ।'^{२८} क्या महाकवि भूषण इतने अल्पमति थे कि वे साहित्य में देशकाल का महत्व नहीं जानते थे जो उन्होंने परवर्ती शासक के समय की परिस्थिति पूर्ववर्ती राजा के नाम पर लगा दी ।

४. महाराजा छत्रसाल, बाजीराव और मस्तानी के विषय में श्री दीक्षित का कथन ध्यान देने योग्य है—'मोहम्मद खॉ वंगस ने पन्ना पर आक्रमण कर दिया । अंत में कोई उपाय चलता न देखकर (महाराज ने) भूषण कवि से सहायता की याचना की । वे तुरंत दक्षिण की ओर चले । पूना पहुँचकर छत्रसाल की ओर से बाजीराव पेशवा से प्रार्थना की ... । युद्ध की समाप्ति पर महाराजा छत्रसाल ने भूषण की सलाह से अपनी कन्या मस्तानी का विवाह बाजीराव पेशवा से कर दिया और अपना एक तिहाई राज्य दहेज में दिया ।'^{२९} श्रीदीक्षित को न जाने यह आधार कहाँ मिला । अवश्य ही श्री दीक्षित के इस कथन से पेशवा बाजीराव तथा महाराज छत्रसाल का चरित्र विकृत हुआ है ।

५. छत्रपति साहू को अपनी मृत्यु के पूर्व ही औरंगजेब ने मुक्त कर दिया था अतः वह धूमधाम से संवत् १७३५ (ई० १७०८) में सिंहासनासीन हुए ।'^{३०} इतिहासकार जानते हैं कि औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र बहादुरशाह ने उत्तर की ओर प्रयाण करते समय साहू को मुक्त किया था ।'^{३१}

२७. वही, पृ० ४७ ।

२८. वही, पृ० ७३ ।

२९. वही, पृ० ७६, ५७, ५८ ।

३०. वही, पृ० ५६ ।

३१. केंब्रिज हिस्टरी, भा० ४, पृ० ३६२ ।

७ (७०-१)

६. 'उत्तर भारत में १८-२० वर्ष लगातार कैद रहने से साहूजी हिंदी भाषा से भली भाँति परिचित थे।'^{३२} राजा साहू कभी भी उत्तरभारत में नहीं वरन् औरंगजेब की छावनी, दक्षिण में ही कैद रहे।^{३३}

७. 'भूषण ने सितारा जाते हुए गोलकुंडा और बीजापुर के शीआ राज-कुमारों से भेंट की थी और उन्हें अपने संघटन में संमिलित कर लिया था।'^{३४} इतिहास के अनुसार औरंगजेब ने ई० १६८६ में बीजापुर और ई० १६८७ में गोलकुंडा के राज्य नष्ट किए थे।^{३५} उनके २०-२२ साल बाद भूषण ने न जाने कहाँ से इन राज्यों के शाहजादों को खोज निकाला और न जाने उन्हें कौन से संघटन में संमिलित कराया।

८. 'बाजीराव पेशवा ने दिल्ली का ग्रामखास जला डाला था। परन्तु इसे भी भूषण ने शिवाजी के नाम पर कथन किया है।'^{३६} इतिहास के अनुसार दिल्ली का ग्रामखास न बाजीराव ने जला डाला था न शिवाजी ने। भूषण का ऐसा कथन भी लक्षित नहीं होता। यहाँ पर भी काल-घटना-क्रम के संबंध में अज्ञता है। किंतु पता नहीं यह अज्ञता किसकी है।

९. 'विदनूर राज्य कोकण के दक्षिणी भाग में अवस्थित है इसे कर्नाटक प्रांत में मानना सरासर भूल है।'^{३७} विदनूर १४° उत्तर और ७५° रेखावृत्त पर अवस्थित है। वह कोकण के दक्षिण में गोवा राज्य के दक्षिण में है। विदनूर कर्नाटक में ही था और आज भी है। उसे महाराष्ट्र में मानना ही सरासर भूल है।

१०. 'शिवाजी के सेनापति हमीरराव (हंबीरराव मोहिते) ने ई० १६७४ में नर्मदापार की और भड़ोच में घुस गए... यह घटना भी १७३० के पीछे की है।'^{३८}

इतिहास से स्पष्ट होता है कि हमीरराव १० दिसंबर १६८५ ई० को मारे

३२. महाकवि भूषण, पृ० ५२।

३३. केंब्रिज हिस्टरी, भा०, ४ पृ० ३६२।

३४. महाकवि भूषण, पृ० ५१।

३५. मुसलमानी रियासत — सरदेसाई, पृ० ७४३।

३६. महाकवि भूषण, पृ० ८७।

३७. वही, पृ० ६६।

३८. वही, १०१।

गए ^{३९} अतः उसके पश्चात् उनका जीवित रहकर या होकर भड़ोच पर आक्रमण करना संपूर्णतया अनैतिहासिक है ।

महाकवि भूषण शिवाजी के समकालीन नहीं थे, इस मत का प्रतिपादन करते समय श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित ने इतिहास का जो विकृत और आधारहीन चित्रांकन किया है तथा साहित्य तथा इतिहास की अनेक घटनाओं का जो काल्पनिक प्रतिपादन किया है उसे साहित्य तथा इतिहास के विद्वानों के संमुख उपस्थित करना ही यहाँ अभीष्ट है ।

*

‘भरतविलाप’ का रचयिता

[सियाराम तिवारी]

‘भरतविलाप’ के रचयिता के रूप में तीन नाम मिलते हैं—तुलसीदास, ईश्वरदास और सूरजदास। अद्योपलब्ध एकाधिक दर्जन प्रतियों में से सूरजदास का नाम केवल दो ही प्रतियों में है। श्री उदयशंकर शास्त्री^१ और प्रयाग संग्रहालय^२ की प्रतियों में सूरजदास का नाम है, यद्यपि प्रयाग संग्रहालय की प्रति में सूरजदास के साथ तुलसीदास नाम भी आया है।^३ और जिस रूप में यह नाम आया है उससे तो इसके रचयिता तुलसीदास ठहरते हैं, न कि सूरजदास। कारण, भण्डित-रूप में तुलसीदास का नाम है, सूरजदास तो पुस्तक तैयार हो जाने पर उसे ले जानेवाले हैं। शास्त्री जी की प्रति में अवश्य ही सूरजदास का नाम स्पष्टतः उल्लिखित है।^४ अतः उन्होंने यह प्रस्तावना रखी है कि ‘भरतविलाप’ सूरजदास की रचना है, ईश्वरदास की नहीं। उनकी मान्यता का आधार केवल यह है कि उन्हें जो प्रति मिली है, वह सूरजदास के ‘रामजन्म’ के साथ लिखित है और दोनों के ग्रंथकर्ता का नाम सूरजदास दिया हुआ है। किंतु सूरजदास का नाम यहाँ क्यों है, इसका कारण भी यही है। प्रतिलिपिकार की सामान्य असावधानी के कारण ऐसा

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६१, अंक १ में ईश्वरदास या सूरजदास शीर्षक निबंध।
२. ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ, सं० डा० शिवगोपाल मिश्र, ग्वालियर, प्र० सं०, पृ० १०५ पर उद्धृत पंक्तियाँ।
३. सुनत कथा कष्ट भेटि जाई। तुलसीदास कहैं गुनगाई।
भरतविलाप संपूरन भैऊ। सूरजदास कवि तासु लै गैऊ।—वही
४. भरतविलाप कथा विमल सूरजदास कवि गाइ।
जो नर सुनैं जो गावहीं जन्म सफल होइ जाइ॥
—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ६१, अंक १ में ईश्वरदास या सूरजदास शीर्षक लेख।

हुआ है। जिस पोथी की प्रतिलिपि यह प्रति है उसमें भी ‘रामजन्म’ के साथ ही ‘भरतविलाप’ लिखित रहा होगा और इसलिये प्रतिलिपिकार ने दोनों के रचयिता को एक समझकर इस दोहे में भी सूरजदास का नाम लिख दिया। अनेक प्रतियों के अंत में ईश्वरदास की छापवाला दोहा है^५ जिसमें आसानी से ईश्वरदास के स्थान पर सूरजदास नाम बैठा दिया जा सकता है। फिर शास्त्री जी ने ही अन्यान्य पोथियों का उल्लेख किया है जहाँ ‘भरतविलाप’ सूरजदास की पुस्तकों के साथ लिखित है लेकिन उनमें कहीं ‘भरतविलाप’ के लेखक सूरजदास नहीं बताए गए हैं। मैंने भी एक दर्जन से अधिक प्रतिलिपियाँ देखी हैं किंतु उनमें से कहीं भी सूरजदास का नाम लेखक के स्थान पर नहीं है। और ‘भरतविलाप’ मुद्रित भी हुआ था।^६ इनमें वह सर्वत्र पृथक् और स्वतंत्र ही है तथा किसी में भी सूरजदास का नाम नहीं है। दूसरी ओर सूरजदास की कोई रचना आद्यावधि मुद्रित नहीं हुई। इससे सिद्ध है कि शास्त्रीजीवाली प्रति प्रतिलिपिकार के प्रमाद का ज्वलंत उदाहरण है और उस प्रति को अपवाद ही समझना चाहिए। निष्कर्षतः ‘भरतविलाप’ के रचयिता सूरजदास कथमपि नहीं हो सकते और इस प्रसंग में उनका नाम विचार की अपेक्षा नहीं रखता।

अब इस संदर्भ में दो नाम विचारणीय रह जाते हैं—तुलसीदास और ईश्वरदास। एकाधिक ईश्वरदास का नाम आज प्राप्त है जिनमें प्राचीनतम हैं ‘सत्यवती कथा’, ‘एकादसी कथा’ और ‘स्वर्गारोहिणी कथा’ के लेखक जिन्होंने १५०० ई० (१५५७ संवत्) में ‘स्वर्गारोहिणी कथा’^७ और १५०१ ई० (१५५८ संवत्) में ‘सत्यवती कथा’^८

५. भरथ विलाप कथा बिमल इसुरदास कही गाइ।

जो नर सुनही जो गावही जनम सुफल होय जाइ ॥

—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना की प्रति।

६. कलकचे नृत्यलाल शील के यंत्र में छपा गया। ११ न० अहीरी टोला।

सन् १३०६।

इसकी एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में है। सन् १९०७ ई० की लिथो की हुई एक प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना में है।

७. संवत् कै अब करौ बखाना, पंद्रह सै सत्तावन जाना

... ..

तेहि दिन कथा अरंभन कीन्हा, रामचंद्र मोहि सुधि बुधि दीन्हा

—ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ, पृ० १४०।

८. जोति एक पांडव के संग पाँच आतमा आठों अंगा

... ..

ता दिन कथा अरंभ यह ईसरदास कवि कीन्हा। —वही, पृ० ६७।

लिखी। डा० शिवगोपाल मिश्र ने 'भरतविलाप' को इसी ईश्वरदास की रचना मानकर उनके ग्रंथों के साथ 'भरतविलाप' को भी संपादित कर दिया है। डा० मिश्र ने 'सत्यवती कथा' और 'भरतविलाप' के कुछ स्थलों, भाषा तथा शैली में साम्य पाया है और इसी आधार पर वे 'भरतविलाप' को 'सत्यवती कथा' के लेखक ईश्वरदास द्वारा रचित मानते हैं। लेकिन अनेक ऐसे प्रत्यक्ष कारण हैं जिनसे 'भरतविलाप', 'सत्यवती कथा' के लेखक ईश्वरदास का रचा हुआ प्रमाणित नहीं होता। ईश्वरदास ने अपनी रचनाओं—'सत्यवती कथा', 'एकादसी कथा' और 'स्वर्गारोहिणी कथा'—में रचनाकाल तथा दिल्ली-सुलतान का उल्लेख किया है किंतु 'भरतविलाप' में न तो कहीं रचनाकाल दिया गया है और न दिल्ली-सुलतान का ही उल्लेख है। अगर 'भरतविलाप' उनकी कृति होती तो इसमें भी वे अवश्य ही रचनाकाल एवं दिल्ली-सुलतान का उल्लेख करते। दूसरे, ईश्वरदास कट्टर रामभक्त मालूम पड़ते हैं, उपर्युक्त तीनों पुस्तकों में उन्होंने इसका परिचय दिया है।^{१०} यहाँ तक कि उन्होंने 'रामनाम जेहि कवहुँ न भावा, ताकर मुँहुँ नहि दइअ देखावा'^{११} कहा है, पर 'भरतविलाप', जो राम के ही जीवन से संबद्ध है, में राम का एक बार भी कहीं स्मरण नहीं किया गया है। यही नहीं, बंदना का जो क्रम

९. ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ, पृ० १०८ ।

१०. क-पहिलै रामचंद्र के दाया ।

तेहि पाछै जालपा कै माया

तेहि प्रसाद होइ ग्रंथ रसारा ॥ ३ ॥ — सत्यवती कथा ।

ख-सीतापति बंदौं रघुराया, मात पिता औ गुरु कै दाया

रामचंद्र मोरि पुरवै आसा, पंडित जिन्ह कर दास तिन्ह कर दासा ॥३॥

—एकादसी कथा ।

ग-रामनाम कवि नरक नेवारा, तेहि सेवा मन लागु हमारा ॥ ३ ॥

—स्वर्गारोहिणी कथा ।

घ-तेहि दिन कथा अरंभन कीन्हा, रामचंद्र मोहि सुधि बुधि दीन्हा ॥ ६ ॥

—वही, ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ ।

११. वही, पृ० १४० ।

उपयुक्त पुस्तकों में है, वह ‘भरतविलाप’ में नहीं है। ‘सत्यवती कथा’ में क्रमशः गणेश, जालपा, भवानी और राम; ‘एकादसी कथा’ में मातापिता, गुरु और राम तथा ‘स्वर्गारोहिणी’ कथा में गणपति, सरस्वती, मातापिता, गुरु और राम की स्तुति की गई है लेकिन ‘भरतविलाप’ में केवल गणपति एवं गुरु की प्रार्थना की गई है। तीसरी बात यह कि ‘सत्यवती कथा’, ‘एकादसी कथा’ और ‘स्वर्गारोहिणी कथा’ में आदि से लेकर अंत तक ईश्वरदास ने अनेक बार अपना नाम दिया है लेकिन ‘भरतविलाप’ की किसी भी प्रति में आरंभ या अंत के अतिरिक्त अन्यत्र ईश्वरदास के नाम की छाप नहीं है। यह सत्य है कि इन तीनों पुस्तकों की और ‘भरत विलाप’ की भाषा एक है, लेकिन भाषाशैली कदापि एक नहीं है। ‘सत्यवती कथा’ के कुछ विशिष्ट प्रयोग ‘भरतविलाप’ में नहीं हैं। ‘सत्यवती कथा’ में सर्वत्र र-युक्त वर्णों में दो बार र-कार लगाया है—नर्न, चर्न, पुर्न, तर्न, प्रर्नवौ, आदि और न-युक्त वर्णों में अनुस्वार का प्रयोग किया गया है पुंन (पुण्य), अंन (अन्न), जगनांथ (जगन्नाथ) आदि। इन दोनों प्रवृत्तियों का ‘भरतविलाप’ में अभाव है। इस तरह ‘सत्यवती कथा’ तथा ‘भरतविलाप’ में सामान्य भाषा के अतिरिक्त और कोई समता नहीं है। सामान्य भाषा का एक होना एक ही रचनाकार का द्योतक कभी नहीं हो सकता, इससे दोनों एक काल की रचना अवश्य सिद्ध होती हैं। तात्पर्य यह कि ‘सत्यवती कथा’, ‘एकादसी कथा’ और ‘स्वर्गारोहिणी कथा’ के लेखक ईश्वरदास ‘भरतविलाप’ के रचयिता नहीं हैं। ‘भरतविलाप’ के कर्ता अगर कोई ईश्वरदास हैं भी तो वे ‘सत्यवती कथा’ के ईश्वरदास से इतर हैं। अतएव अब यही विचारना है कि ‘भरतविलाप’ के रचयिता वस्तुतः कौन हैं। ‘हिंदी साहित्य’ में भी ‘सत्यवती कथा’ के लेखक को ही ‘भरतविलाप’ का रचयिता मान लिया गया है^{१२} लेकिन ऐसा मानने का कोई कारण वहाँ नहीं दिया गया है।

विचार करने पर ‘भरतविलाप’ के रचयिता तुलसीदास ही ठहरते हैं। ऐसा कहने के दो सशक्त आधार हैं। बीस-बाईस प्रतियों की सूचना मेरे पास है जिनमें से कुछ का मैंने स्वयं अवलोकन किया है और कुछ का विवरण रिपोर्टों में या अन्यत्र देखा है। इनमें से केवल छह प्रतियों में ईश्वरदास का नाम है। दो प्रतियों में सूरजदास का नाम है, जिनपर पहले विचार किया जा चुका है। शेष प्रतियों में तुलसीदास का नाम है। इस तरह अधिकांश प्रतियाँ तुलसीदास के नाम का समर्थन करती हैं। दूसरी बात यह है कि प्राचीनतम प्रति, जिसकी

सूचना डा० शिवगोपाल मिश्र ने दी है, मैं भी तुलसीदास का ही नाम है। यह प्रति उन्हें एकडला ग्राम में प्राप्त हुई थी जिसका लिपिकाल १७५६ ई० है। इसके और १८२३ ई० के बीच की कोई प्रति अभी उपलब्ध नहीं हुई है।

निष्कर्ष यह कि 'भरतविलाप' के रचयिता तुलसीदास ही हैं किंतु यह तुलसीदास रामचरितमानसकार गो० तुलसीदास से इतर ही नहीं, प्राचीनतर भी है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल 'भरतविलाप' की रचना दिल्ली के बादशाह शाह सिकंदर के राज्यकाल (१४८६-१५१७ ई०) में बताते हैं। 'भरतविलाप' की प्रतिलिपियों की संख्या और उसके प्रातिस्थानों की अवस्थिति को देखते हुए यह सहज ही अनुमेय है कि भरतविलापकार तुलसी भी कम लोकप्रिय नहीं थे किंतु आज मानसप्रणेता गो० तुलसीदास के प्रकाश से चौंधियाई आँखें 'भरतविलाप' के रचयिता तुलसीदास को नहीं देख पातीं।

*

वर्णरत्नाकर की श्रेणी के पूर्ववर्ती ग्रंथ

भुवनेश्वरप्रसाद गुरुमैता

कालक्रमानुसार परिवर्धमान कविशिक्षा वाङ्मय और वर्णक साहित्य का आयास इतना विस्तृत हो चुका है कि इसके प्रसार की पूर्वापरता का निर्णय और अनुसंधान करना एक प्रमुख विषय हो जाता है।

ज्योतिरीश्वर के पूर्व अनेक आचार्यों ने काव्यशास्त्र - विषयक ग्रंथ लिखे थे किंतु वे ठीक उसी श्रेणी के नहीं हैं। इसके पूर्व कवि - शिक्षा - विषयक कुछ ऐसी पुस्तकें मिलती हैं जिनके नाम इस प्रसंग में भी लिए जा सकते हैं। राजशेखर (८८०-९२० ई०) की काव्यमीमांसा, क्षेमेंद्र (१०२८-१०६५ ई०) का कविकंठाभरण और कलाविलास, अमरचंद्र यति (तेरहवीं शती का मध्य) की काव्यकल्पलतावृत्ति, मम्मट (१००० ई०) का काव्यप्रकाश, देवेश्वर (१४वीं शती का आरंभ) की कविकल्पलता आदि पुस्तकें कवियों को शिक्षा देने की दृष्टि से संस्कृत में लिखी जा चुकी थीं पर वर्णरत्नाकर की अपेक्षा उनमें विषयविस्तार कम है।

वर्णरत्नाकर में ज्योतिरीश्वर ने पुरानी परंपरा का अनुकरण आँख मूँदकर नहीं किया। विषय और भाषा दोनों ही में यह पूर्ववर्ती ग्रंथों से भिन्न है। पहले के सभी ग्रंथ संस्कृत में थे। उनका विषय था काव्य की परिभाषा, उसका रूप (भाषा), उसकी आत्मा (रस), कवि का कर्तव्य और काव्य का गुण - दोष - विवेचन। इनमें भाषा के भेद (संस्कृत, प्राकृत आदि), गुण (प्रसाद, ओज और माधुर्य), रीति (गौड़ी, शौरसेनी, वैदर्भी आदि), रस, अलंकार, भाव, विभाव और संचारी भावों का विश्लेषण होता था। दसवीं शती के प्रथम चरण में राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा लिखी। अतएव उसके चार सौ वर्ष बाद उनकी काव्यपद्धति बहुत कुछ प्रचलित हो गई होगी। लेकिन ज्योतिरीश्वर उनके दो काव्यग्रंथों की ही चर्चा करते हैं—विद्वशालभंजिका और कपूरमंजरी।^१

विषय के विस्तार की दृष्टि से वर्णरत्नाकर के पूर्ववर्ती ग्रंथों में वराहमिहिर की बृहत्संहिता, सोमेश्वर का मानसोल्लास, अंगविज्ञा तथा परवर्ती ग्रंथों में पृथ्वी-

१. भाटवर्णना, वर्णरत्नाकर, पृ० ४४

८ (७०-१)

चंद्र चरित्र, आईने अकबरी, सभाशृंगार एवं वर्णकसमुच्चय उल्लेखनीय हैं। वर्णरत्नाकर के सांस्कृतिक अध्ययन के लिये इन पूर्वापर ग्रंथों का परिचय आवश्यक है। और किसी भी प्राचीन ग्रंथ एवं ग्रंथकार के देश, काल तथा परस्पर पूर्वापरता के संबंध में निर्णय तत्प्रतिपादित विचारों के विकासक्रम तथा भाषा के सहज परिवर्तनशील स्वरूप के आधार पर विहित अनेक ऊहापोह द्वारा साध्य है। क्योंकि, भारतीय मनीषियों ने ऐहिक प्रतिष्ठा को गौण समझ, अपनी रचना के देशकाल के संबंध में सदा मौन का अवलंबन किया है।

बृहत्संहिता

बराहमिहिर की बृहत्संहिता विपुल विषयों के व्यापक वर्णन की दृष्टि से 'वर्णरत्नाकर' से तुलनीय हो सकती है। संपूर्ण ग्रंथ में १०७ अध्याय हैं। प्रथम शास्त्रोपनयनाध्याय में लेखक ने ग्रंथ का उद्देश्य बता दिया है — शिष्यों के द्वारा किए गए प्रश्नों के प्राचीन मुनियों के द्वारा कहे हुए उत्तर, अनेक प्रकार के कथाप्रसंग, सूर्य आदि ग्रहों की उत्पत्ति आदि थोड़े उपयोगी विषयों को छोड़कर प्राणियों के हित के लिये सब प्रयोजनों से युक्त साररूप विषयों का इस ग्रंथ में वर्णन करता हूँ।^२

फलित ज्योतिष के ज्ञान के माहात्म्य का बखान कर वे विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रों के संयोगों का और मनुष्य के भाग्य पर उनके प्रभावों का वर्णन करते हैं। प्रसंगतः चौदहवें कूर्म विभागाध्याय^३ में भारतीय मूगोल का विस्तृत रेखाचित्र उपलब्ध हो जाता है। यहाँ हमें मध्यदेश का विभाग, पूर्व दिशा, आग्नेय दिशा, दक्षिण, पश्चिम, वायव्यकोण, उत्तर और ईशानकोण में स्थित देशों के नाम मिलते हैं। साथ ही यह भी पता लगता है कि प्रत्येक ग्रह के रक्षणात्मक प्रभाव में कौन कौन से देश, लोग और वस्तुएँ आती हैं। तैत्तलीसर्वे अध्याय में इंद्र-ध्वजोत्सव का कवित्वपूर्ण वर्णन दिया गया है^४ और उसके अनंतर और भी धार्मिक विषयों का प्रतिपादन किया गया है। उनचासवें पट्टलक्षणाध्याय में राज-मुकुट का प्रमाण और फलनिर्देश किया गया है।^५ खड्गलक्षणाध्याय में प्रथम

२. प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसंगान् स्वल्पोपयोगान् ग्रहसंभवांश्च ।

सन्त्यज्य फल्गूनि च सारभूतं भूतार्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये ॥—बृहत्संहिता, पृ० ४।

३. वही, पृ० ११८ - १२३ ।

४. वही, पृ० २३५ - २५८ ।

५. वही, पृ० २६६ - २६७ ।

खड्ग का प्रमाण और बाद में व्रणों से शुभाशुभ फलों का कथन है।^६ अंगविद्याध्याय^७ में सामुद्रिक विद्या का ज्ञान कराना अभीष्ट है।

ग्रंथ का उच्चाद्ध वास्तुविद्या (गृहनिर्माण) संबंधी महत्वपूर्ण अध्याय से आरंभ होता है। इसमें सेनापति, मंत्री, युवराज, सामंत, अधिकारी, राजपुरुष, कोश, रतिभवन आदि गृहों के प्रमाण बताकर सर्वतोभद्रवास्तु, वर्धमान, स्वस्तिक, रुचक और नन्दावर्त आदि चतुःशालों का फल तथा अनेक द्विशाल-त्रिशाल वास्तुओं के नाम और लक्षण दिए गए हैं। वृत्तायुर्वेदाध्याय^८ में विविध वृत्तों को बगीचे में लगाने के प्रकार, काल, नियम, विधि तथा क्रम का उल्लेख करते हुए उनकी चिकित्सा बताई गई है। प्रासादलक्षणाध्याय^९ में देवालय निर्माण की विधि वर्णित है। इसके पश्चात् वज्रलेप, मूर्तिनिर्माण, प्रतिमाप्रतिष्ठापन का विधान बताया गया है।^{१०} तदनंतर गौ, बैलों, कुत्तों, मुर्गों, कछुओं, घोड़ों, हाथियों, मनुष्य, स्त्री, आतपत्रों इत्यादि के विशेष लक्षणों का वर्णन^{११} दिया गया है। इसके पश्चात् वस्त्र पहनने का फल, चामर का लक्षण तथा छत्र का प्रयोजन सिद्ध किया गया है।^{१२} ७४ वें अध्याय में स्त्री के रूप और गुणों की नाना प्रकार से प्रशंसा की गई है। कांदर्पिकाध्याय^{१३} में वाजीकरण की औषधियाँ बताई गई हैं। गंध युक्तिर्नामाध्याय^{१४} में केशों को काला करने का प्रयोग, सुगंधतेल बनाने का प्रकार, धूप, मुखवास, स्नानीय चूर्ण, दंतकाष्ठ आदि बनाने के नियम और पान के गुण बताए हैं। पुंस्त्रीसमायोगाध्याय^{१५} में अंतःपुर के जीवन का जो वर्णन दिया गया है उसमें कामसूत्र और अर्थशास्त्र के साथ सादृश्य दृष्टिगोचर होता है। शय्याओं

६. वही, पृ० २६७ - ३०३।

७. वही, पृ० ३०३ - ३१३।

८. वही, पृ० ३१६ - ३५४।

९. वही, पृ० ३७५ - ३७६।

१०. वही, पृ० ३८०-३८५।

११. वही, पृ० ३८६-६६।

१२. वही, पृ० ४०३-४७।

१३. वही, पृ० ४५३-५८।

१४. वही, पृ० ४६४-६६।

१५. वही, पृ० ४६६-७५।

१६. वही, पृ० ४७५-८०।

और आसनों को बताकर रत्नों^{१७} का वर्णन है, छोटे छोटे अध्यायों में दीपकों और दंतधावनों का वर्णन है, तब एक लंबा शाकुन प्रकरण^{१८} ११ अध्यायों में दिया गया है, अवशिष्ट भाग में दो अध्यायों (१०० और १०३) में विवाह का विषय है। ग्रहगोचराध्याय^{१९} में छंदों की चर्चा है। १०६ अध्यायों में ग्रंथ समाप्त हो जाता है तथापि विषयसूची के लिये एक अंतिम शास्त्रानुक्रमध्याय^{२०} दे दिया गया है।

मानसोल्लास

श्री सुनीति बाबू ने वर्णारत्नाकर को संस्कृत के विश्वकोषात्मक ग्रंथ 'मानसोल्लास' का समकक्ष ही बताया है।^{२१} इसकी रचना महाराष्ट्र के चालुक्य राजा भूलोक मल्ल सोमेश्वर के राज्यकाल (११२७-११३८ ई०) में हुई थी। लेखक ने अपने ग्रंथ को 'जगदाचार्य पुस्तक' नाम से अलंकृत किया है जो विश्वकोष का होना सिद्ध कर देता है। संपूर्ण ग्रंथ पांच विंशतियों में विभक्त है। इसकी विषय-सीमा विशाल है।

प्रथम विंशति में राजा की योग्यता और आवश्यकता, अतिथिपूजन, दान-प्रिय वचन, तप, तीर्थस्नान आदि का वर्णन है।

द्वितीय विंशति में राजगुण, मंत्रिलक्षण, पुरोहितलक्षण, ज्योतिर्विदगणलक्षण, गणक, सेनापति, धर्माधिकारिक, दंडधर, गणितविद्, प्रतिहार, लेखक, सारथि, वैद्य, कोश, गजभेद, गजशिक्षा, धातुपरीक्षा, रत्नपरीक्षा, दुर्ग, षडबलनिरूपण (अर्थात् अश्वबल, अश्वचिकित्सा, गजबल, गजचिकित्सा, रथबल और पदातिबल), प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति, उत्साहशक्ति, संधि, विग्रह, यान, आसन, आश्रय, द्वैधीभाव, साम, भेद, दान, दंडभेद, यात्राभेद, व्यूहरचना आदि वर्णित हैं।

तृतीय विंशति कला के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें मंदिर भूमि, काष्ठ आदि के लक्षण, मूर्तियों के भेद, गृहोपभोग, स्नानभोग, तांबूलभोग, विलेपन-

१७. वही, पृ० ४८७-४७।

१८. वही, पृ० ४९६-५६८।

१९. वही, पृ० ५९१-६१७।

२०. वही, पृ० ६२१-२४।

२१. वर्णारत्नाकर, डा० सु० कु० चटर्जी, भूमिका, पृ० ३३।

भोग, वस्त्रोपभोग, आसनोपभोग, चामरभोग, पुत्रभोग, अन्नभोग, पानीयभोग, यानोपभोग, छत्रभोग, शय्याभोग, धूपभोग आदि वर्णित हैं।

चतुर्थ विंशति में शास्त्रविद्या, शास्त्रविनोद, गजवह्याली विनोद, तुरवाह्याली अंकविनोद, मल्लविनोद, कुक्कुट - लावक - मेघ - महिष - विनोद, पारावत-विनोद, श्येनविनोद, मत्स्यविनोद और मृगयाविनोद आदि प्रकरण है।^{२२}

अंगविज्जा

अंगविज्जा^{२३} जैन साहित्य का प्राचीन ग्रंथ है। यह कुषाण गुप्तयुग के संधिकाल का ज्ञात होता है। जैसलमेर की चौदहवीं एवं पंद्रहवीं शती में लिखित ताडपत्रीय प्रतियों एवं अन्यान्य भंडारों की सोलहवीं एवं पिछली शताब्दियों में लिखित प्रतियों के आधार पर मुनि पुण्यविजय ने इसका संशोधन और संपादन किया है तथा प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी ने इस मूल्यवान् संग्रहग्रंथ को प्रकाशित किया है।

इस ग्रंथ की भाषा सामान्यतया महाराष्ट्री प्राकृत है, फिर भी एक सामान्य नियम है कि जैन रचनाओं में जैन प्राकृत—अर्धमागधी भाषा का प्रभाव रहता है अतः जैन ग्रंथों में प्रायोगिक वैविध्य दिखता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि जैन निर्ग्रंथों का पादपरिभ्रमण अनेक प्रांतों में होने के कारण उनकी भाषा के ऊपर जहाँ तहाँ की लोकभाषा आदि का प्रभाव पड़ता है और वह मिश्र भाषा हो जाती है। यही कारण है कि इसे अर्धमागधी कहा जाता है। इस अंगविज्जा ग्रंथ की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत प्रधान होती हुई भी वह जैन प्राकृत है। इसी कारण से इस ग्रंथ में ह्रस्व-दीर्घ स्वर, द्विर्भाव-अद्विर्भाव, स्वर व्यंजनों के विकार-अविकार, विविध प्रकार के व्यंजनविकार, विचित्र प्रयोग - विभक्तियाँ आदि बहुत नजर आती है।^{२४} भाषा और संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़ा ही महत्वपूर्ण और वर्णरत्नाकर से तुलनीय है।

अंगविद्या प्राचीन काल की एक लोकप्रचलित विद्या थी। शरीर के लक्षणों से अथवा अन्य प्रकार के निमित्त या चिन्हों से किसी के लिए शुभाशुभ फल का कथन इस विद्या का विषय था।^{२५} पाणिनि ने ऋगयनादि गण में अंग-

२२. सोमेश्वर विरचित मानसोत्सास, संपा० श्री गोंदेकर, भा० १ और २।

२३. पुष्पायरियविरह्या अंगविज्जा, संपा० मुनि पुण्यविजय।

२४. वही, प्रस्तावना, पृ० ६।

२५. अंगविज्जा, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ना० प्र० प०, वर्ष ६१, अंक ४
(संवत् २०१३) पृ० २१७।

विद्या, उत्पात, उत्पाद, संवत्सर, मुहूर्त निमित्त आदि विषयों पर लिखे जानेवाले व्याख्यानग्रंथों का उल्लेख किया है।^{२६} ब्रह्मजाल सुक्त में अंगविद्या के अध्ययन को भित्तुओं के लिये वर्जित माना है।^{२७} किंतु यह अंगविद्या क्या थी, इसको बतानेवाला एकमात्र प्राचीन जैन ग्रंथी यह 'अंगविज्जा' नाम से बच गया है, जिसकी गणना आगम साहित्य के प्रकीर्णक ग्रंथों में की जाती है। इसमें ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व की बहुत बड़ी शब्दावली है, जिससे तत्कालीन जीवन के अनेक क्षेत्रों की जानकारी मिल जाती है। ये सूचियाँ बौद्ध ग्रंथ महाव्युत्पत्ति की सूचियों के समान ही महत्वपूर्ण हैं।

इस ग्रंथ में कुल साठ अध्याय हैं। कहीं कहीं लंबे अध्यायों में पटल नामक अवांतर विभाग, जैसे आठवें अध्याय में विविध विषय संबंधी तीस पटल और नौवें अध्याय में १८६८ कारिकाएँ, हैं जिनमें २७७ विविध विषयों का निरूपण है।^{२८}

'अंगविज्जा' में शरीर के अंग, मनुष्य, तिर्यक् अर्थात् पशु पक्षि आदि क्षुद्रजंतु, देव देवी और वनस्पतियों से संबंध रखनेवाले कितने ही पदार्थ वर्णित हैं जो सांस्कृतिक अध्ययन में लाभ पहुँचा सकते हैं। इस ग्रंथ में मनुष्य से संबंध रखनेवाले बहुविध पदार्थ, जैसे चतुर्वर्ण, जातिविभाग, गोत्र, योनि अटक, सगण संबंध, कर्मबंधे व्यापार, स्थान अधिकार, आधिपत्य, यान वाहन, नगर, ग्राम, मंडप द्रोणमुखादि, प्रादेशिक विभाग गृह प्रासादादि के स्थानविभाग, प्राचीन सिक्के, विविधप्रकार के तैल, अपाश्रय (शय्या, आसन, यान, खंभ वत्त आदि) के साधन, रत - सुरत क्रीड़ा के प्रकार, दोहद, रोग, उत्सव, वादित्र, आयुध, नदी, पर्वत, खनिज, वर्ण - रंग, मंडल, नक्षत्र, कालवेला, व्याकरणविभाग, इन सबके नामों का विपुल संग्रह है।^{२९}

तिर्यग्विभाग के चतुष्पद, परिसर्प, जलचर, सर्प, मत्स्य, क्षुद्र जंतु आदि के नामों का सविस्तर वर्णन है। वनस्पति विभाग में वृक्ष, फल गुल्म, लता आदि के नामों का संग्रह भी खूब है। देव और देवियों के नाम तो काफी संख्या में हैं ही।

२६. पा० ४।३।७।

२७. दीर्घनिकाय।

२८. अंगविज्जा, डा० अग्रवाल, ना० प्र० प०, वर्ष ६१, अंक ४; अंगविज्जा, भूमिका।

२९. अंगविज्जा, मुनि पुण्यविजय, प्रस्तावना।

इन पदार्थों का वर्णन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की दृष्टि से महत्व का है। ग्रंथकार आचार्य ने वृद्ध, जाति और उनके अंग, सिक्के, भोजन, वस्त्र, क्षुद्र जंतु जैसे जड़ एवं चेतन पदार्थों को पुं - स्त्री - नपुंसक विभाग में विभक्त किया है। कई चीजों के नाम, वर्णन और एकार्थक भी मिलते हैं। वर्णरत्नाकर का अंगविज्ञा के साथ तुलनात्मक दृष्टि से सांस्कृतिक अध्ययन आवश्यक है।

काव्यमीमांसा

दुर्भाग्यवश 'काव्यमीमांसा' नामक यह विशाल विश्वकोश संपूर्ण नहीं मिलता। राजशेखर ने १८ भागों या अधिकरणों में उसे लिखा था। इसका 'कविरहस्य' नामक केवल प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध है। वर्णरत्नाकर पर उसकी छाप निश्चय ही दिखाई देती है। हेमचंद्र, वाग्भट, भोजराज तथा शारदातनय आदि आलंकारिकों ने इस ग्रंथ के अनेक प्रसंगों के पूरे के पूरे उद्धरण उठाकर अपने ग्रंथों में रख दिए हैं। इससे इसका प्राचीनकालीन महत्व प्रगट होता है। ज्योति-रीश्वर की भाँति राजशेखर ने भी देश बाल से संबंधित विपुल सामग्री हमें दी है।

उपलब्ध अधिकरण के अठारह अध्यायों में प्रथम तीन अध्याय तो भूमिका के रूप में हैं और शेष पंद्रह अध्यायों में कविरहस्य का विषय वर्णित किया गया है। आरंभिक अध्यायों में लेखक ने काव्यपुरुष की उत्पत्ति तथा साहित्य - विद्यावधू के साथ उसका विवाह संबंध वर्णित किया है जो सर्वथा नूतन कल्पना है। प्रथम अध्याय में राजशेखर ने अठारहों अध्यायों के विषयों का निर्देश कर दिया है।^{३०} साथ ही इसकी प्रामाणिकता और उपादेयता भी सिद्ध की है। शास्त्रनिर्देश नामक द्वितीय अध्याय में काव्य को अपौरुषेय और पौरुषेय दोनों प्रकार के शास्त्रों में मुख्य सिद्ध करते हुए शास्त्रों का विस्तार करनेवाले सूत्र, भाष्य, वार्तिक, टीका, विवृति, कारिका एवं पंजिका आदि की सरल सुंदर व्याख्या प्रस्तुत की गई है। तृतीय अध्याय में काव्यपुरुष की उत्पत्ति, उसका विकास, रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति आदि का सरल वर्णन पौराणिक रूप से करते हुए काव्य को दर्शनशास्त्रों के समान परम पुरुषार्थ - मोक्ष का साधन भी सिद्ध किया गया है। चतुर्थ अध्याय से कविरहस्य का प्रसंग आरंभ हो जाता है। इसमें सर्वप्रथम शास्त्र के अध्ययन के अधिकारी या

३०. शास्त्रसंग्रहः शास्त्रनिर्देशः, काव्यपुरुषोत्पत्तिः, पदवाक्यविवेकः, पाठप्रतिष्ठा, अर्थानुशासनं, वाक्यविधयः, कविविशेषः, कविचर्या, राजचर्या, काकुप्रकाराः, शब्दार्थहरणोपायाः, कविसमयः, देशकाल विभागः भुवनकोश इति कविरहस्यं प्रथमाधिकरणमित्यादि।-काव्यमीमांसा, पृ० ४।

काव्यविद्या के शिष्यों की मीमांसा की गई है। इसके अनंतर काव्यरचना, कवि और आलोचक के संबंध आदि का गंभीर विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय में प्रतिभा और व्युत्पत्ति^{३१} की सूक्ष्म मीमांसा की गई है। इसी प्रकरण में तीन प्रकार के कवियों — शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभय कवि का विवेचन किया गया है। शास्त्रकवि, काव्य में रस-संपत्ति की वृद्धि करता है तो काव्यकवि, शब्दार्थों को मृदु मनोहर बना देता है और उभय कवि में दोनों गुण होते हैं। पुनश्च उनके भेदों की परिगणना कराते हुए अंत में पाक के संबंध में मीमांसा करते हुए अनेक आचार्यों के मतों की समीक्षा प्रस्तुत की है।

षष्ठ अध्याय में पदों और वाक्यों की व्याख्या, उनके लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं। काव्य का लक्षण करते हुए गुण और अलंकार युक्त वाक्य को काव्य माना है। काव्यविद्या के संबंध में जो तीन आक्षेप हैं—काव्य अतिशयोक्तिपूर्ण होते हैं, शृंगाररस प्रधान होने से असत् विषयों के उपदेशक हैं, इसमें अश्लील विषयों के वर्णन आते हैं, इनका तर्कपूर्ण उत्तर दिया गया है। राजशेखर का कहना है कि कहीं व्यावहारिक शिक्षा के रूप में और कहीं वस्तुस्थिति का स्पष्ट चित्रण करने के लिये वेदों, शास्त्रों और पुराणों में भी ऐसे विषय पाए जाते हैं।^{३२} अतः काव्य में इनका समावेश नवीन नहीं है।

सातवें अध्याय में ब्राह्म, शैव और वैष्णव इत्यादि तीन प्रकार के वाक्य कहे गए हैं। देवताओं और देवजातियों की भाषाओं का विवेचन किया गया है। दूसरा प्रकरण काकुसंबंधी है। शास्त्रों में काकु का साम्राज्य तो है ही, किंतु काव्य का यह जीवन है। इसके बाद काव्यपाठ प्रकरण में कहते हैं कि गले का सुरीला-पन और काव्य पढ़ने का ढंग अनेक जन्म के संस्कारों से किसी किसी कवि को ही प्राप्त होता है।^{३३} आगे राजशेखर ने भिन्न भिन्न देशों के कवियों की पाठप्रणाली का विनोदपूर्ण विवेचन किया है।

३१. प्रतिभाव्युत्पत्तिमिथः समवेते श्रेयस्यां इति यायावरीयः। न खलु लावण्यलाभादते रूपसम्पदते रूपसम्पदो वा लावण्यलब्धिर्महते सौन्दर्याय।

—काव्यमीमांसा, पृ० ३६।

३२. प्रकमापन्नो निबन्धनीय एवायमर्थः इतियायावरीयः। तदिदं श्रुतौ शास्त्रे चोपलभ्यते। —काव्यमीमांसा, पृ० ३८।

३३. पाठ सौंदर्य मनैकजन्मविनिर्मितम्—वही, पृ० ८०।

अष्टम अध्याय में राजशेखर ने मुख्य रूप से श्रुति, स्मृति, इतिहास, दर्शन, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, कामशास्त्र आदि काव्यार्थ के बारह स्रोत और उनमें भी अनेक अवांतर स्रोत बताए हैं। इस अध्याय का तात्पर्य है कि कवि के लिये अनेक शास्त्रों, व्यवहारों, कलाओं तथा देशकाल आदि का व्यापक ज्ञान अपेक्षित है।

नवम अध्याय में कवि के वर्णनीय सात विषयों की सूक्ष्म आलोचना करते हुए अर्थ की व्यापकता और उसके अवांतर सूक्ष्मतम विषयों की दार्शनिक एवं वैज्ञानिक मीमांसा की गई है। राजशेखर ने सात विषयों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है—स्वर्गीय, मर्त्यगत, स्वर्गमर्त्यगत, पातालीय, मर्त्यपालीय, दिव्यपातालीय और दिव्यमर्त्यपातालीय। आगे वे कहते हैं कि विषय असंमम हैं और अर्थ अनंत काव्यों में प्रतिपादित विषय प्रायः असत्य और कल्पित होते हैं, सुनने मात्र में सुंदर लगते हैं। जैसे—नीले आकाश में उड़ते हुए हनुमान ने अपने पीतवर्ण बालों की क्रांति से आकाश को पीला बना दिया।^{३६} काव्यरचना में सरसता या नीरसता कवि के शब्दों द्वारा होती है, अर्थ के कारण नहीं।^{३५} पर्वत^{३६}, समुद्र^{३७}, नदी^{३८} हाथी, घोड़े रथ आदि अत्यंत कठोर और भयानक अर्थों को कवि, शब्दों के द्वारा सरस सुंदर बना देते हैं। इसके अनंतर मुक्तक और प्रबंध भेद से दो प्रकार के काव्यार्थ कहे गए हैं। अंत में कहा गया है कि जो कवि जितनी ही भाषाओं में प्रवीण होता है, वह उतना ही यशस्वी होता है।^{३९}

दशम अध्याय में कवियों के रहनसहन और दैनिक व्यवहार के संबंध में छोटी छोटी बातों तक का उल्लेख किया गया है जो बड़ा ही चित्ताकर्षक है। समाज में कवियों का अच्छा सम्मान था। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार साधारण जनता भी काव्यप्रेमी थी। कविता की अनेक भाषाएँ थीं, जिनमें संस्कृत,

३४. 'अपा' लङ्घयितुं राशिं रुचा पिंजरयन्नमः ।

खमुत्पात हनुमान्नीलोत्पलदलद्युतिः ॥—काव्यमीमांसा, पृ० १०६ ।

३५. वही, पृ० १११ ।

३६. वही, पृ० ११२ ।

३७. वही, पृ० ११२ ।

३८. वही, पृ० १११ ।

३९. संस्कृतवत्सर्वास्वपि आपासु यथासामर्थ्यं यथारुचि यथाकौतुकं चावहितः

स्यात् ।—वही, पृ० ११६ ।

'यस्येत्थं धीः प्रगल्भा स्तपयति सुकवेस्तस्य कीर्तिर्जगन्ति'—वही, पृ० १२० ।

६ (७०-१)

प्राकृत, अपभ्रंश और पैशाची भाषाएँ प्रधान थीं। राजकवि का जीवन उच्च स्तर का था। उनके निवासस्थान बाग-वगीचों, फव्वारों, सरोवरों और वापियों से सुशोभित थे। उनमें पशु पक्षी, पुष्प, वृक्ष, लतामंडप और कृत्रिम पर्वत रहते थे। वे सुगंधित द्रव्यों का सेवन और बहुमूल्य वस्त्र धारण करते थे। कवि के लिये एकांतप्रियता आवश्यक थी। उनके लेखनागार और लेखनसामग्री भी वर्णित हैं। उनकी रचनाओं को परीक्षाएँ भी होती थीं। राजशेखर ने कुछ राजसभाओं का भी वर्णन किया है। इसमें जिस आदर्श का विधान किया है उस पर विश्वास करने में कोई बाधा नहीं।^{४०}

राजशेखर के अनुसार राजा कवियों की सभाओं का आयोजन करे। इसके लिये एक सभाभवन तैयार कराए जिसमें सोलह खंभे, चार द्वार और आठ मत्तवारणी (अटारियाँ) हों। सभाभवन के बीच में हाथ भर ऊँची मणिवेदिका हो जिसके ऊपर राजा का सिंहासन होना चाहिए। राजा के चारों ओर भिन्न भिन्न भाषाओं के गुणी तथा कविगण बैठें। उत्तर की ओर संस्कृत भाषा के कवियों के लिये, उनके पीछे वैदिक, दार्शनिक, पौराणिक, स्मृतिवेत्ता, वैद्य, ज्योतिषी तथा उसी प्रकार के अन्य विद्वानों के लिये स्थान होना चाहिए। पूर्व की ओर प्राकृत भाषा के कवि बैठें। इसके अनंतर नट, नर्तक, गायक, वादक, कुशीलव तथा इसी प्रकार के अन्य गुणीजनों को स्थान देना चाहिए। पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषा के कवि और उनके पीछे चित्रकार, मणिकार, स्वर्णकार, लौहकार तथा बढ़ई एवं अन्य शिल्पवेत्ताओं का स्थान हो। दक्षिण की ओर पैशाची भाषा के कवि और उनके पीछे गणिका, जादूगर तथा पहलवान आदि अपना आसन ग्रहण करें। ऐसी सजी हुई सभा में बैठकर राजा को काव्यगोष्ठी प्रवृत्त करनी चाहिए।^{४१}

एकादश अध्याय में शब्दहरण के पांच प्रकार बताए गए हैं^{४२}—
१—पदहरण, २—पादहरण, ३—अर्थहरण, ४—वृत्तहरण, ५—प्रबंधहरण।

उद्धरण के रूप में किसी प्राचीन कवि का पद या पाद हरण करना हरण नहीं,

४०. हिंदी साहित्य की भूमिका, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १६।

४१. काव्यमीमांसा, कविचर्या-राजचर्या-प्रकरण, पृ० १३२-३३।

४२. वही, पृ० १३६।

प्रत्युत स्वीरक्षण है। अंत में चार प्रकार के कवि कहे गए हैं^{४३}— १-उत्पादक^{४४} अर्थात् मौलिक सूक्ष्मवाला, २-परिवर्तक अर्थात् प्राचीन कवियों की मौलिक सूक्ष्मों को कौशल के साथ परिवर्तित करनेवाला, ३-आच्छादक अर्थात् दूसरों की कल्पनाओं को छिपानेवाला, ४-संवर्गक अर्थात् काव्यों की कल्पनाओं के आधार पर रचना करनेवाला।

महाकवि वह है जो नवीन कल्पनाओं की सृष्टि कर काव्य को चमत्कारी बना सके।^{४५} द्वादश तथा त्रयोदश अध्याय में अर्थहरण संबंधी मीमांसा है जिसमें अर्थहरण के ३२ भेद गिनाए हैं।

चतुर्दश, पंचदश और षोडश अध्यायों में कविसमय का वर्णन है। कविसमय को कवियों का एक परंपरागत सांप्रदायिक नियम बता कर कवियों के लिये उसका वर्णन अत्यावश्यक बताया है। कविगण के शास्त्र एवं लोकव्यवहार विरुद्ध उल्लेखों का उत्तर देते हुए राजशेखर ने लिखा है कि प्राचीन कवियों ने सहस्रों शाखाओं में विस्तृत वेदों का अध्ययन और विशाल विस्तृत भूमंडल के द्वीपों में भ्रमण करके जिन नियमों का प्रचलन किया है, वे आज कालक्रम से हमें भले ही विपरीत प्रतीत हों, किंतु हमें उनकी परंपरा का निर्वाह करना ही चाहिए।^{४६} राजशेखर ने तीन प्रकार के कविसमय बताए हैं—स्वर्गीय, भौम और पातालीय।^{४७} चौदहवें और पंद्रहवें अध्याय में भौम कविसमय की विस्तृत विवेचना है और सोलहवें अध्याय में स्वर्गीय और पातालीय कविसमय का वर्णन कवियों के पथप्रदर्शन के लिये महत्वपूर्ण है।

४३. उत्पादकः कविः कश्चित्कश्चित्च परिवर्तकः ।

आच्छादकस्थता चान्यस्तथा संवर्गकोऽपरः ॥—काव्यमीमांसा, पृ० १५१ ।

४४. उत्पादक कवि के संबंध में वाणभट्ट ने भी लिखा है—सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे-गृहे । उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव।—हर्षचरित, १ ।

४५. शब्दार्थोक्तिषु यः पश्येदिह किञ्चन नूतनम् ।

उल्लिखेत्किंचन प्राच्यं मन्यतां स महाकविः ॥—काव्यमीमांसा, पृ० १५१ ।

४६. पूर्वोहि विद्वांसः सहस्रशाखं साङ्गं च वेदमवगाह्य, शास्त्राणि चावबुध्य, देशान्तराणि द्वीपान्तराणि च परिभ्रम्य, यानर्थानुपलभ्य प्रणीतवन्तस्तेषां देशकालान्तरवशेन अन्यथात्वेऽपि तथात्वेऽपि निबन्धो यः स कविसमयः । वही, पृ० १६१ ।

४७. स च त्रिधा स्वर्ग्यो भौमः पातालीयश्च—वही, पृ० १६१ ।

सप्तदश अध्याय देशपरिचय के संबंध में है। राजशेखर ने यहां भारतीय भूगोल का जो वर्णन किया है वह प्राचीन पुराणों, महाभारत, बृहत्संहिता एवं यूनान, चीन आदि देशों के यात्रियों से मिलता-जुलता है। राजशेखर ने लिखा है कि भारतवर्ष के नौ खंड हैं, जिनमें एक का नाम कुमारी द्वीप है।^{४८} यही कुमारी द्वीप आधुनिक भारत है। भारत के इन नौ खंडों में वर्तमान मलाया, सिंहल (लंका), सुमात्रा, जावा, अनाम, चीन और तुर्किस्तान आदि के भाग हैं।^{४९} कुमारी द्वीप में सात कुलपर्वत हैं।^{५०} पूर्व में आसाम की ओर चीन का कुछ भाग तथा उत्तर में अरब, फारस, अफगानिस्तान आदि कुमारी द्वीप के ही जनपद थे।

अठारहवें अध्याय में कालविभाग का ज्ञान कवियों के लिये आवश्यक बताया गया है। पहले सौर और चांद्र मान का परिचय देते हुए बताया गया है कि कवि को किस ऋतु में किस दिशा की वायु का वर्णन करना चाहिए। तदनंतर वर्षा से लेकर ग्रीष्म तक लुहों ऋतुओं का तथा उनके वर्णनीय वृक्ष, पुष्प, उत्सव, त्योहार, विनोद आदि का वर्णन है। कविरहस्य नामक इस प्रथम अधिकरण से ही स्पष्ट है कि इस ग्रंथ के सभी अधिकरण प्राप्त होते तो साहित्य का बड़ा उपकार होता।

क्षेमेंद्र कृत कविकंठाभरण

महाकवि क्षेमेंद्र काश्मीर के निवासी थे। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। ये पहले शैव थे परंतु अपने जीवन की संध्या में वैष्णव धर्म में दीक्षित हुए। अपने समस्त ग्रंथों में इन्होंने अपना दूसरा नाम व्यासदास लिखा है।^{५१} साहित्यशास्त्र में

४८. इन्द्रद्वीपः कलेरुमान् ताम्रपर्णो, गभस्तिमान्, नागद्वीपः, सौम्यो, गंधर्वो, वरुणः, कुमारी द्वीपश्चायं नवमः।—काव्यमीमांसा, पृ० २२३।

भारतवर्ष के ये नौ भेद वायु और विष्णु पुराणों के आधार पर लिखे गए हैं। देखिए, वायुपुराण, अ० ४५, ७८-८५।

४९. काव्यमीमांसा, पादटिप्पणी, पृ० २२३।

५०. विन्ध्यश्च पारियात्रश्च शुक्तिमानृक्षपर्वतः

महेंद्रसहस्रमलयाः सप्तैते कुलपर्वताः ॥—वही, पृ० १३।

देखिए, मनुस्मृति, २।२२।

५१. इत्येष विष्णोरवतारमूर्तेः काव्यामृतास्वादविशेषभक्त्या।

श्री व्यासदासान्यतमाभिधेन क्षेमेंद्रनाम्ना विहितः प्रबंध ॥

—दशावतारचरित १।४१।

ये अभिनवगुप्त के साक्षात् शिष्य थे।^{५२} इनके दो महत्वपूर्ण ग्रंथ 'श्रौचित्य-विचार-चर्चा' और 'कविकंठाभरण' कविशिद्धा की परंपरा में उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ग्रंथों की रचना काश्मीर नरेश अनंत (१०२८-१०६५ ई०) के राज्यकाल में हुई थी।^{५३} इनके दशावतारचरित का रचनाकाल १०६६ ई० होने के आधार से इनका आविर्भाव काल ११वीं शती का उत्तरार्ध है।

अपने 'श्रौचित्यविचारचर्चा' में श्रौचित्य के सिद्धांत की इन्होंने बड़ी उत्तम व्याख्या की है। भरत और आनंदवर्धन के बाद क्षेमेंद्र ने ही श्रौचित्य के नाना प्रकारों का विशिष्ट विवेचन इस लघु किंतु महत्वपूर्ण ग्रंथ में किया है। 'श्रौचित्य' और 'अनौचित्य' के निर्णय में बहुधा काव्य में प्रथित रूढ़ियाँ ही कसौटी बन जाती हैं। पर क्षेमेंद्र के श्रौचित्य सिद्धांत का विश्लेषण करने पर 'परिवर्तनीय अभिरुचि या व्यक्तिगत रुचि'^{५४} ही इसका प्रमुख आधार है।

'कविकंठाभरण' का कविशिद्धा - विषयक साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इसके अनुसार शिद्धा की पांच कक्षाएं इस प्रकार हैं—

- १ - अकवेः कवित्वातिः — कवित्वशक्ति का यत्किंचित् संपादन
- २ - शिद्धाप्राप्तगिरः कवेः — पदरचना - शक्ति - संपादन करने के बाद उसकी पुष्टि करना।
- ३ - चमत्कृतिश्च शिद्धातां — काव्य चमत्कार।
- ४ - गुणदोषोद्गतिः — काव्य के गुणदोष का परिज्ञान।
- ५ - परिचयप्राप्ति—शास्त्रों का परिचय।

काव्यकल्पलतावृत्ति

कविकंठाभरण के बाद बारहवीं शती ई० में जयसिंह सिद्धराज के समय में जयमंगलाचार्य ने कविशिद्धा^{५५} नामक पुस्तक लिखी जो स्वल्प होने के कारण

५२. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यं बोधवारिधे।

आचार्यशेखरमणेः विद्याविवृतिकारिणः ॥—बृहत्कथामंजरी ११।३७।

५३. तस्य श्रीमदनन्त राजनृपतेः काले किलायं कृतः।—श्री० वि० च०।

राज्ये श्रीमदनन्तराज नृपतेः काव्योदयोयं कृतः।—कविकंठाभरण।

५४. संस्कृत पोएटिक्स—एस० के० डे०, भा० २, पृ० ३५८।

५५. काव्यकल्पलतावृत्ति, जगन्नाथ शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, भूमिका, पृ० ३।

उपयुक्त न सिद्ध हो सकी। हलायुध ने भी इसी के आसपास 'कविरहस्य' नामक पुस्तक लिखी जो केवल क्रियापदों की विचित्रता तक सीमित रही।^{५६} प्रासंगिक रूप से कविशिक्षा का विवेचन करनेवाले अन्य ग्रंथ विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं।

कविशिक्षा की दृष्टि से अमरचंद्र कृत काव्यकल्पलतावृत्ति को बहुत अधिक सफलता मिली। इसका आंशिक निर्माण अरिसिंह ने किया और पूर्ति की अमरचंद्र ने। इसपर लिखी अमर की वृत्ति^{५७} से पता चलता है कि इस मूल ग्रंथ की रचना में दोनों ग्रंथकारों का सहयोग रहा।^{५८} इसकी रचना तेरहवीं शती ई० के मध्य में हुई थी। इसके रचयिता अमरचंद्रयति वीसलदेव के जैन मंत्री वस्तुपाल (१२४२ ई०) के समय के थे।^{५९} प्रस्तुत ग्रंथ में वर्ण्य वस्तुओं की संपन्नता एवं छंदोवद्धता के नियमों का सम्यक् रूपेण परिपालन हुआ है। इसमें चार प्रतान (खंड) हैं और प्रत्येक प्रतान के अंतर्गत अनेक स्तवक (अध्याय) हैं।

काव्यकल्पलतावृत्ति में काव्यरचना के लिये उपयोगी प्रभूत सामग्री एवं साधनों को जुटाया गया है। इसमें अरिसिंह के सूत्र और अमरचंद्रयति की वृत्ति एक साथ मिलती है। अमरचंद्र और अरिसिंह एक ही गुरु, जिनदत्त सूरि के सहपाठी शिष्य प्रतीत होते हैं।^{६०} समग्र काव्यसाहित्य का मंथन कर अमरचंद्र ने अपनी वृत्ति में अनेक काव्यरुद्धियों का अद्भुत संग्रह प्रस्तुत किया है।

यद्यपि काव्यकल्पलतावृत्ति का उद्देश्य काव्यरुद्धियों का संग्रह करना नहीं है पर कविता के लिये उपयोगी सामग्री तथा नियमों का निर्देश करते हुए साहित्य में प्रचलित काव्यरुद्धियों का संग्रह यहाँ अनायास हो गया है।^{६१} प्रस्तुत

५६. वही, पृ० ३।

५७. इस वृत्ति का नाम ग्रंथ की पुष्पिका में कविशिक्षावृत्ति है।—काव्यकल्पलता-वृत्ति, पृ० १५४।

५८. किञ्चिच्च तद्वरचितमात्मकृतञ्च किञ्चित्।

व्याख्यास्यते त्वरित काव्य कृते च सूत्रम् ॥—वही, पृ० १।

५९. संस्कृत पोएटिक्स—एस० के० डे, भा० १।

६०. भारतीय साहित्यशास्त्र, बलदेव उपाध्याय, पृ० ११६।

६१. भारतीय साहित्य, वर्ष २, अंक २, अप्रैल १९५७, पृ० १९१।

वृत्ति में उपलब्ध रूढ़ियों का एक कोष सा प्रतीत होता है। संस्कृत साहित्य की ये चिरपरिचित रूढ़ियाँ वर्णरत्नाकर पर भी अपना अनुक्षण प्रभाव छोड़ गई हैं और इसलिये इन रूढ़ियों का आकलन हमारे साहित्य के परंपराप्राप्त वैभव को निरखने परखने के लिये बहुत उपयोगी है।

इन रूढ़ियों को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है^{६२}—१ - उपमान, २ - संख्या, ३ - आकार, ४ - वर्ण, ५ - वर्णविषय, ६ - सदृशवस्तुसंग्रह, ७ - विरोध, ८ - आनुकूल्य, ९ - आधार, १० - आधेय, ११ - कविसमय, १२ - श्रेष्ठ पदार्थ, १३ - वाद, १४ - पुराण, १५ - शैलीगत रूढ़ियाँ, १६ - अन्य।

कविकल्पलता

कविशिखा पर यह भी प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके रचयिता हैं देवेश्वर। इनके पिता मालवा के राजा के महामात्य वाग्भट थे। कविकल्पलता^{६३} का रचनाकाल चौदहवीं शती ई० का प्रथम चरण है। प्रस्तुत ग्रंथ काव्यकल्पलतावृत्ति का अनुकरण मात्र है। विषय के निरूपण में ही देवेश्वर अमर के ऋणी नहीं है बल्कि काव्यकल्पलता-वृत्ति के बहुत से नियमों, लक्षणों और उदाहरणों को इन्होंने ज्यों का त्यों उद्धृत किया है।

राजनीतिरत्नाकर

हरिसिंह देव के मंत्री चंडेश्वर ठाकुर ने सात खंडों में रत्नाकर ग्रंथों की रचना की थी - व्यवहाररत्नाकर, कृत्यरत्नाकर, दानरत्नाकर, शुद्धिरत्नाकर, पूजारत्नाकार विवादरत्नाकर और गृहस्थरत्नाकर।

इन रत्नाकरों के अतिरिक्त राजनीतिरत्नाकर^{६४} भी इन्हीं के द्वारा विरचित है। यह सोलह तरंगों में विभाजित है। प्रत्येक तरंग के आरंभ और अंत में तरंग (अध्याय) का नाम उपलब्ध है।

अपने रत्नाकरों में लेखक को जहाँ अपरिचित संस्कृत शब्दों का प्रयोग करना पड़ा, वहाँ मैथिल में अर्थ दे दिए हैं। ऐसे शब्द लगभग एक सौ से अधिक हैं।

*

६२. वही, पृ० ११२।

६३. कविकल्पलता, बिब्लियोथिका इंडिका, सं० शरतचंद्र शास्त्री, प्रका० एशि० सो० बंगाल, १९१३।

६४. चंडेश्वर कृत राजनीतिरत्नाकर, सं० काशीप्रसाद जायसवाल, बि० उ० रि० सो०, पटना, द्वि० सं०, १९३६।

प्रेमरत्न और उसकी रचयित्री

[पूर्णमासी राय]

हिंदी कृष्णकाव्यधारा में लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की कुरुक्षेत्र लीला को प्रकीर्णक पदों की मुक्तक परंपरा से अलग हटकर प्रबंधात्मक सौष्टव के साथ उपस्थित करनेवाली कवयित्री श्रीमती रत्नकुँवरि का नाम विशेष उल्लेख्य है। ये सुप्रसिद्ध राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की पितामही थीं। इन्होंने 'प्रेमरत्न' नामक खंडकाव्य की रचना की जिसमें कुरुक्षेत्र में कृष्ण और व्रजवासियों के मिलन का मर्मस्पर्शी चित्र अंकित है। इधर खोज के साहित्यान्वेषकों की कृपा से इनकी उक्त रचना के संबंध में भ्रम फैल गया है। उन लोगों ने यह कहना आरंभ किया कि 'प्रेमरत्न' रत्नकुँवरि की रचना न होकर किन्हीं रत्नदास या रत्नकवि की कृति है। बात यहाँ तक बढ़ी कि हिंदी के कुछ अनुसंधायकों ने भी धोखे में पड़कर रत्नदास को ही 'प्रेमरत्न' का रचयिता घोषित कर दिया।^१ किंतु ग्रंथावलोकन एवं विभिन्न खोज-विवरणिकाओं के आलोड़न - विलोड़न से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रेमरत्न' रत्नकुँवरि की रचना है, किन्हीं रत्नदास या रत्नकवि की नहीं।

'प्रेमरत्न' का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से जनवरी सन् १८८१ ई० में तीसरी बार हुआ जिसे शिवप्रसाद सितारेहिंद ने अपने विज्ञापन के साथ प्रकाशित कराया।^२ तत्पश्चात् उन्हीं राजा साहब ने जब सन् १९०० ई० में अपना नया गुटका^३ तैयार किया तब उसके पहले भाग में 'प्रेमरत्न' के कुछ रमणीय अंशों को भी स्थान दिया। कहना न होगा कि नागरीप्रचारिणी सभा की सन् १९०६ की खोजविवरणिका में इसका विवरण लिया गया। उसमें रचयिता का नाम दिया गया है 'रत्नकवि'^४। संभवतः उस खोज के अन्वेषक को यह ज्ञात नहीं था। कि 'प्रेमरत्न'

१. हिंदी के मध्यकालीन खंडकाव्य—डा० सियाराम तिवारी पृ० १६१।

२. 'प्रेमरत्न' की उक्त प्रति डा० हरेकृष्ण के सौजन्य से प्राप्त।

३. नया गुटका—राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद—पृ० ७५ से ८३; ई० जे० लाजरस पेंड को०, बनारस, सन् १९०० ई०।

४. खोज विवरणिका, सन् १९०६, सं० २६७, पृ० ३६६-७।

प्रेमरत्न और उसकी रचयित्री

७३

नाम की पुस्तक 'रत्नकुँवरि' के नाम से छप चुकी है। इसके पश्चात् सन् १६२३-२५ ई० की खोजविवरणिका की प्रति की पुष्पिका में लिखा है, 'इति श्री ब्रजवासी हरिभिलनकथा प्रेमरतन कवि रतनदास कृत संपूर्णमस्तु कावुकमासे कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रविवासरे संपूर्ण'।^५ इस पुष्पिका की विलक्षणता ध्यान देने योग्य है कि इसमें रचनाकार का नामोल्लेख तो हुआ, कृति की रचना के वार, तिथि, मास आदि तो दिए गए किंतु मूल संवत् ही गायब कर दिया गया जिससे सन्-संवत् की सत्यता का पता लग ही नहीं सकता। उक्त खोजविवरणिका की भूमिका में डा० हीरालाल ने यह घोषित कर दिया कि रचना 'रत्नकुँवरि' की नहीं है, रतनदास कवि की है और ये रतनदास कवि सन् १६०६ ई० की खोज के रत्नकवि ही हैं।^६

सन् १६२६ में 'प्रेमरत्न' का विवरण पुनः लिया गया।^७ यहाँ भी उसके रचयिता का नाम रत्नदास ही लिखा गया जब कि इसकी पुष्पिका में रत्नदास नाम का उल्लेख कहीं नहीं है। १६२६-३१ में उपलब्ध प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है, 'इति प्रेमरतन ग्रंथ संपूर्ण समाप्तः रामगिरि कोपिल मध्ये संवत् १८७२ वि०'। ध्यान देने की बात है कि इस विवरण के द्वितीय परिशिष्ट की सं० २६७ ए में लिखा गया है कि इस ग्रंथ की रचयित्री बीबी रत्नकुँवरि काशीनिवासिनी थीं।^८ उसी विवरणिका में इस ग्रंथ का एक अन्य विवरण भी है जिसकी भूमिका में रत्नकुँवरि का नाम स्पष्ट लिखा हुआ है जो इस प्रकार है—'इति श्री प्रेमरतन बीबी रत्नकुँवरि कृत संपूर्ण समाप्तः लिखितं चेतनदास स्वपठनार्थं काशीवासी सं० १६०७ वि०'।^९ अतः इस खोजविवरणिका से 'प्रेमरत्न' की रचयित्री के रूप में रत्नकुँवरि का ही नाम सिद्ध होता है।

सन् १६४१ ई० में इस ग्रंथ का एक और हस्तलेख मिला जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है—'इति श्री रतन विरचितं प्रेमरतन समाप्तः श्री लाल गिरिधारी लाल साकीन महला पीयरी'।^{१०} आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने उक्त विवरणिका का

५. वही, सन् १६२३-२५ ई०, द्वितीय परिशिष्ट, संख्या ३५६।

६. वही, सन् १६२३-२५ ई०, भूमिका, पृष्ठ ११६।

७. वही, सन् १६२६-३१ ई०, दे० हिंदी रूपांतर डा० बटेकृष्णकृत।

८. वही, सन् १६२६-३१ ई०, द्वितीय परिशिष्ट सं० २६७ ए०।

९. खोजविवरणिका सन् १६२६-३१ ई०, पृ० ५५६।

१०. वही, सन् १६४१, भाग २, पृ० ६४२।

संपादन करते समय भूमिका में यह घोषित कर दिया कि रचनाकार का वास्तविक नाम रतन नहीं बीबी रतनकुँवरि है जो सं० १८४४ वि० में काशी में विद्यमान थीं। आचार्य मिश्र के अभिमत को प्रमाण मानकर नागरीप्रचारिणी सभा से अभी हाल में (संवत् २०२१ वि०) प्रकाशित होनेवाले 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण (सन् १६००-१६५५)' के प्रथम खंड में खोजविवरणा सन् १६२३-२५ ई० और सन् १६२६-३१ ई० की भूल का शोधन कर दिया गया और रत्नकुँवरि को ही 'प्रेमरत्न' की कर्त्री मान लिया गया है।^{११}

सन् १८८३ ई० में ठाकुर शिवसिंह सेंगर द्वारा प्रस्तुत किए गए हिंदी कवियों के वृत्तसंग्रह 'शिवसिंह सरोज' में भी रत्नकुँवरि^{१२} और रतनकवि ब्राह्मण बनारसी दोनों के नाम पर 'प्रेमरतन' दिया गया है। इसमें उद्धृत उदाहरण रत्नकुँवरिकृत प्रेमरत्न से ही हैं।

गार्सी द तासी बेचारे फ्रांस में बैठे बैठे यह नहीं समझ सके कि 'प्रेमरत्न' का रचयिता पुरुष है या स्त्री। इसलिये उन्होंने बीबी रत्नकुँवरि के स्थान पर बाबू रतनकुँवर लिख दिया।^{१३}

सन् १८८६ में डा० ग्रियर्सन ने माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आंव हिंदुस्तान में 'प्रेमरत्न' के रचयिता का नाम 'रत्नकुँवरि' बताया और इसके साक्ष्य में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का सन् १८८७ ई० में लिखित पत्र उद्धृत किया।^{१४} किंतु प्रेमरत्न के विषयविमर्श में उक्त डाक्टर साहब से भूल हो गई। 'प्रेमरत्न' में कृष्णभक्तों का विवरण नहीं है। इसमें कृष्ण और ब्रजवासियों का कुरुक्षेत्र में पुनर्मिलन वर्णित है।

मिश्रवंशु भी इस भ्रम से न बच सके। उन लोगों ने 'प्रेमरत्न' को

११. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—पहला भाग।

१२. शिवसिंह सरोज, पृ० ४४१ (रत्नकुँवरि बाबू शिवप्रसाद सितारेहिंद की प्रपितामही, बनारसी, सं० १८०८ में उपस्थित) प्रेमरत्न ग्रंथ इनका श्रीकृष्ण-भक्तों की जीवनसूरी है, पृ० २५६। रतन कवि—ब्राह्मण, बनारस निवासी सं० १६०५ प्रेमरत्न ग्रंथ बनाया, पृ० २६५।

१३. हिंदुई साहित्य का इतिहास (तासी, अनुवादक, डा० लक्ष्मीसागर वाष्पेय, पृ० ३१७।

१४. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास (ग्रियर्सन) अनुवादक, डा० किशोरीलाल गुप्त, पृ० २१२।

रत्नकुँवरि और रत्नकवि दोनों के नाम पर लिख दिया। संभवतः उन लोगों के समक्ष १६०६ की खोजविवरणिका थी।^{१५}

अतः उक्त खोजविवरणिकाओं का विश्लेषण करनेपर सन् १६४१ ई० की खोजविवरणिका का मत निर्णयात्मक जान पड़ता है। पूर्वोक्त खोजविवरणियों में उल्लिखित 'प्रेमरत्न' रत्नकुँवरिकृत है जिसका रचनाकाल संवत् १८४४ (सन् १७८७ ई०) है। इसका उल्लेख कवयित्री ने स्वयं किया है।^{१६} कवयित्री के कथनानुसार इस ग्रंथ का निर्माण काशी में हुआ, इससे उनका काशीवासिनी होना अनुमित होता है।

* डा० सावित्री सिन्हा ने निर्विवाद रूप से रत्नकुँवरि को ही प्रेमरत्न की रचयित्री मानकर उनके काव्य का मूल्यांकन किया है।^{१७}

'रत्नकुँवरि' के जीवनवृत्त का विश्वसनीय आधार राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद का वह पत्र है जिसे उन्होंने सन् १८८७ ई० में डा० ग्रियर्सन को लिखा था। उन्होंने लिखा है, 'मेरी दादी रत्नकुँवरि करीब ४५ वर्ष पहले मरीं जब मैं १६ वर्ष का ही था और स्वर्गीय महाराज भरतपुर के वकील की हैसियत से गवर्नर जनरल के अजमेर स्थित एजेंट कर्नल सदरलैंड की कचहरी में था। उनकी अवस्था जब उन्होंने दुनिया छोड़ी, ६० और ७० के बीच थी। मुझे दुःख है कि मैं आपको ठीक ठीक तिथियाँ नहीं दे सकता। 'प्रेमरत्न' के अतिरिक्त उन्होंने अनेक पद भी रचे थे। मेरे पास एक हस्तलिखित ग्रंथ पद की पोथी है जिसमें उन्होंने अपने हाथों अपने पद लिखे हैं। वह अच्छा गाती थीं और बहुत सुंदर लिखती थीं। वह संस्कृत अच्छा जानती थीं। फारसी की भी कुछ जानकारी थी। वह औषधियाँ भी जानती थीं और जो कुछ भी मैं जानता हूँ उसका अधिकांश मैंने उनसे ही सीखा।'^{१८} इस प्रकार उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सन् १८८७ ई० से ४५ वर्ष पहले सन् १८४२ ई० में रत्नकुँवरि स्वर्गवासिनी हुईं जब कि उनकी अवस्था ६० और ७० के बीच थी। अतः उनका जन्म संवत् १८३४ वि० (१७७७ ई०) के लगभग माना जा सकता है। डा० ग्रियर्सन ने भी इसी को स्वीकार किया है।

१५. मिश्रबंधु विनोद—संवत् १९८४, भा० २, पृ० ७०१।

१६. ठारह से चालीस चतुर वर्ष जब व्यक्तित्व भय विक्रम नृप अवनीस भये भयो यह ग्रंथ तब।—प्रेमरत्न की लीथो पर छपी प्रति सन् १८८१ तीसरी बार।

१७. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृ० २०१-२०६।

१८. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० २१२, सं०। ३७६

किंतु इसमें संदेह प्रतीत होता है क्योंकि प्रेमरत्न का रचनाकाल सं० १८८४ भाव सुदी पंचमी दिया गया है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की गणना के अनुसार इस ग्रंथ की रचना उस समय हुई जब कवयित्री की अवस्था १० वर्ष की रही होगी जिसकी संभावना कम जान पड़ती है। इसलिये राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का कवयित्री का जीवन - तिथि - विषयक कथन ठीक नहीं प्रतीत होता। राजा साहब ने जो उनकी वय ६० और ७० के बीच लिखी है, वह यदि ८० और ९० के बीच होती तो कोई संदेह न रहता।

रत्नकुँवर परम विदुषी कवयित्री थीं। उनके विविध ज्ञान का परिचय करते हुए राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने 'प्रेमरत्न' के विज्ञापन में लिखा है, 'वह संस्कृत में बड़ी पंडिता थीं, छहो शास्त्र की वेत्ता। पारसी भाषा भी इतनी जानती थीं कि मौलाना रूम की मसनवी और दीवान शम्स तवरेज जब कभी हमारे पिता पढ़कर सुनाते थे तो उसका संपूर्ण आशय समझ लेती थीं। गानेबजाने में अत्यंत निपुण थीं और चिकित्सा यूनानी और हिंदुस्तानी दोनों प्रकार की जानती थीं, योगाभ्यास में परिपक्व थीं। यम-नियम और वृत्ति ऋषियों - मुनियों की सी थी। वह हमारी दादी थीं। इससे हमको अब अधिक प्रशंसा लिखने में लाज आती है परंतु जो साधु, संत और पंडित लोग उस समय के उनके जाननेवाले काशी में वर्तमान हैं, वे उनके गुणों को यथाविधि स्मरण करते हैं।' इस उद्धरण से उनकी बहुज्ञता और व्यक्तित्व का एक चित्र सामने आजाता है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के शब्दों में, 'जो कुछ भी थोड़ी बहुत जानकारी मुझे है उसका अधिकांश मैंने उनसे पाया।' उनका अंतिम समय काशी में ही बीता। 'प्रेमरत्न' की विविध प्रतियों की प्राप्ति से यह सहज अनुमित होता है कि रत्नकुँवर विदुषी कवयित्री के रूप में निश्चय ही बहुत प्रसिद्ध थीं।^{११}

उनका 'प्रेमरत्न' काव्यग्रंथ लीलावतु श्रीकृष्ण और प्रेममूर्ति व्रजवासियों के कुरुक्षेत्रमिलन का रसमय आख्यान है। कृष्णकाव्य - परंपरा की विशाल राशि के बीच यह एक जगमगाता हुआ रत्न है जो काव्यशैली की दृष्टि से रामकाव्य की प्रबंधशैली के अधिक समीप जान पड़ता है। यह ठीक है कि इसमें गृहीत कथा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कंध (उत्तरार्द्ध) का बयासीवाँ

११. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संचित विवरण (सन् १९००-१९५५)
प्रथम भाग, पृ० ६०७।

अध्याय है। इसमें श्रीकृष्ण के परमप्रेममय व्यक्तित्व की तरलायित मुखरता के ऊपर दार्शनिकता का मुखौटा लगा दिया गया है। भागवत के इस प्रकरण में विशुद्ध आध्यात्मिक भाव है। कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि मेरा प्रेम प्राणियों को अमरत्व प्रदान करानेवाला है। जैसे घट, पट आदि जितने भी भौतिक पदार्थ हैं उनके आदि, अंत और मध्य में, बाहर और भीतर, उनके मूलकारण पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश ही श्रोतप्रोत हो रहे हैं, वैसे ही जितने भी पदार्थ हैं, उनके पहले, पीछे, बीच में, बाहर और भीतर मैं ही मैं हूँ। इसी प्रकार सभी प्राणियों के शरीर में ये ही पाँचो भूत कारणरूप से स्थित हैं और आत्मा भोक्ता के रूप से अथवा जीव के रूप से स्थित हैं परंतु मैं इन दोनों से परे अविनाशी सत्य हूँ। ये दोनों मेरे ही अंदर प्रतीत हो रहे हैं। इस अध्यात्मज्ञान की शिक्षा से गोपियों भगवान से एक हो गई—उनका जावकोश नष्ट हो गया। यह है भागवत में प्रेममय कृष्ण का दार्शनिक प्रवचन।^{२०}

भागवत के इस रमणीय वृत्त को अनेक कवियों ने ग्रहण किया। महाकवि सूर ने 'सूरसागर'^{२१} में कृष्ण और ब्रजवासियों के इस कुरुक्षेत्रमिलन को मनो-वैज्ञानिक भूमिका पर अवस्थित किया है और कृष्ण के प्रेममय व्यक्तित्व का मूर्त चित्र उतारा है। कृष्ण ने ब्रजवासियों के प्रेम को स्मरण कर कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर स्नान करने का निश्चय किया। कुरुक्षेत्र पहुँचकर उन्होंने गोपी, ग्वाल, नंद, यशोदा आदि को बुलाने के लिये एक दूत भेजा। दूत के पहुँचने के पहले ही गोपियों को शकुन होने लगे। सुरदास ने इस कुरुक्षेत्रमिलन में राधा को ही कथा का केंद्र बनाया है। राधा और कृष्ण का वह कुरुक्षेत्रमिलन अपूर्व तन्मयता और एकाकारिता के बीच समाप्त हुआ। खोजविवरणिका से यह भी ज्ञात होता है कि चरणदास ने कुरुक्षेत्रलीला^{२२} और रघुराम ने कृष्णामोदिका

२०. मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते।

दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां सदापनः ॥ ४१ ॥

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः।

भौतिकानां यथा खं वाभूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥ ४६ ॥

एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्माऽऽत्मना ततः।

उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमचरे ॥ ४७ ॥

—भागवत दशमस्कंध, अध्याय ८२

२१. सूरसागर — दशमस्कंध, पद ४२७५-४२९७।

२२. खोजविवरणिका—१६०६-११, सं० ४५।

(रचनाकाल सं० १७५१)^{२३} में इस मर्मस्पर्शी प्रकरण को अपने काव्य का विषय बनाया ।

किंतु इन सबसे रत्नकुँवर के 'प्रेमरत्न' का अपना अलग महत्व है । इन्होंने कुरुक्षेत्रमिलन को प्रबंधसौष्टव के साथ उपस्थित किया है । कथा संक्षेप में इस प्रकार है—कृष्ण ने सूर्यग्रहण के अवसर पर सत्यभामा, रुक्मिणी तथा अन्य द्वारकावासियों के साथ कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान इस आशय से किया कि वहाँ स्नान और व्रजवासियों से भेंट का 'एक पंथ द्वै काज' संभव है । वहीं नंद, यशोदा और अन्य व्रजवासी भी आए । एक गोप को द्वारकावासी से ही कृष्ण के आने की सूचना मिली । उसने सभी व्रजवासियों में इस समाचार को फैला दिया । सभी व्रजवासी कृष्ण से मिले । इस अवसर पर सत्यभामा कृष्ण का उपहास भी करती हैं । कृष्ण, यशोदा, नंद, गोपियों, राधा आदि से अलग अलग मिलते हैं । राधा और रुक्मिणी भी परस्पर सौहार्दभाव से मिलती हैं । इस समय कृष्ण रुक्मिणी से राधाप्रेम की विचित्रता भी बतलाते हैं । कृष्ण कुछ दिनों तक व्रजवासियों के साथ रहते हैं और वहीं एक दिन ऋषियों का आगमन होता है । वसुदेव देवकी उन लोगों को भोजन कराते हैं । देवकी द्वारका का स्मरण दिलाकर लौटने का प्रस्ताव करती हैं । व्रजवासी विकल हो उठते हैं । पर हरिमाया से पुनः उन्हें उच्चाट हो जाता है और वे घर जाने के लिये व्याकुल होने लगते हैं । किंतु यह माया राधा को नहीं व्याप्त होती । इस अवसर पर राधा और सत्यभामा में अपने अपने प्रेम को लेकर विवाद छिड़ जाता है । कृष्ण इस समय बड़ी द्विधा में पड़ जाते हैं । वे द्वारका लौटें या व्रज । अंततोगत्वा वे दो रूप धारण कर व्रज और द्वारका दोनों जगह जाते हैं । इस प्रकार 'प्रेमरत्न' की इस संक्षिप्त कथा में कृष्ण के प्रेमप्रवण व्यक्तित्व का पूर्ण निर्वाह संभव हो सका है । इस कृति का सौंदर्य समुचित संदर्भों के साथ ही खुल सकता है इसलिये विस्तृत विश्लेषण उचित होगा ।

भागवत और सूर की क्रमशः दार्शनिकता और मुक्तकशैली से पृथक् 'प्रेमरत्न' की प्रेमप्रवणता और प्रबंधात्मकता व्यावर्तक मानी जा सकती है । इसकी कथा का आयाम अत्यंत लघु है पर कवयित्री ने अपनी प्रतिभा से कथासूत्रों का संयोजन कौशल से किया है । इसके आदि में स्तुतिविधान है । परमपुरुष परमात्मा और गुरुचरणों की वंदना है । आरंभ इस प्रकार है—

२३. वही, १९०६-८, सं० ६८ ।

प्रेमरत्न और उसकी रचयित्री

७६

श्री राधाकृष्णाय नमः अथ प्रेमरत्न लिख्यते ॥
 सोरठा— अविगत आनन्दकंद परम पुरुष परमात्मा ।
 सुमिरि सु परमानंद गावत कछु हरियश विमल ॥
 पुनि गुरु पद शिर नाय उर धरि तिनके बचन वर ।
 कृपा तिनहि की पाय प्रेमरत्न भाषत रतन ॥

काव्य के प्रारंभ में कृष्णजन्म से लेकर द्वारका तक जाने की कथा आई है। एक दिन कृष्ण के समक्ष रुक्मिणी ने ब्रजप्रेम की चर्चा चलाई। वे भावविह्वल हो उठे। उन्होंने कहा—

वह वृंदावन सुख सघन कुंज कदम की छाँहि ।
 कनकमई यह द्वारका ताकी रज सम नाहि ॥
 रानी सोरह सहस तुम करत रहत अति प्रीति ।
 श्री राधा छवि मोहनी कछु ही न्यासी रीति ॥

उनके मन में सदा ही यह बात रहती थी कि ब्रजवासियों से मिलूँ—

प्रभु के मन यह रहत सदाही । ब्रजवासिन ते भेट्यौ नाही ॥
 इक दिन दिनकर ग्रहण भयो जब । बहु नर नारी जात चले तब ॥
 यह सुनि यदुनंदन मन बानी । एक पंथ द्वै कारज ठानी ॥

भागवत के कृष्ण औत्सुक्यवश पुण्यार्जन के लिये कुरुक्षेत्र गए। 'प्रेमरत्न' के कृष्ण ने 'एक पंथ द्वै काज' से कुरुक्षेत्र की यात्रा की। सूर के कृष्ण ने ब्रजवासियों के प्रेम का स्मरण कर कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। भागवत, सूर और रत्नकुंवरि के प्रेममय कृष्ण की न्यूनाधिकता लक्षित की जा सकती है।

द्वारावती से कुरुक्षेत्र जाने की तैयारियाँ होने लगीं। कवयित्री ने वातावरण का मूर्तिमान चित्र खींचा है—

कारे करिवर गरजन लागे । सावन घन जनु लखि अनुरागे ॥
 अगणित तुरंग चले हिहिनावत । खच्चर सहस ऊँट अररावत ॥
 चौपालन मुख पाल पालकी । डोली अरु चंडोल नालकी ॥
 अमित भीर मग परत न पायो । धुरि धुंध नभ मंडल छायो ॥

द्वारकाधीश के साथी वर्ण-वर्ण के वितानों में कुरुक्षेत्र में इस आनंद से निहार कर रहे हैं जैसे यह डेरा नहीं उनका घर ही है। इसी समय एक गोप नटवेश में बीच बाजार में गया। वहाँ इतना भारी लश्कर देखकर चकित हो गया—

गोप एक नटवेषकर आयो बीच बजार ।
 तँह खरभर लश्कर पर्यौ, सो अलि रह्यौ निहार ॥

इक यादव हंसि के कलौ, कहाँ तुम्हारी वास ।

अति सुन्दर तब छवि बनी, नाम करहु परकास ॥

प्रश्नकर्ता ने अपना पता बताया और कहा कि यह द्वारकाधीश श्रीकृष्ण का कटक है । द्वारका नाम सुनते ही वह ज्वाल बेसुध हो गया—

सुनत द्वारका नाम तिहि लियो विरह उर छाये ।

हा नंदनंदन कान्ह कहि, गयो ज्वाल सुरक्षाये ॥

उस भोलेभाले ब्रजवासी ने अपने जाल सहचर कृष्ण के संबंध में पूछा—

इक गोपाल संग भ्रम जाई वस्यो नृपति है सोइ पुर जाई ।

हम कह छुँड़ि भयो सो न्यारे । ताही विनु सब भये दुखारे ॥

उस गोप ने दूर से ही आवाज लगाई । वायु का प्रकंपन इस समाचार को गोपियों तक ले गया । अब क्या था, गोपाल के आने की प्रसन्नता विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न रूप में छलक पड़ी । गोपियाँ फड़क उठीं क्या उनका ऐसा पुण्योदय हुआ ? नंद के नेत्रों में आँसू उमड़ पड़े, यशोदा का मातृत्व छलक पड़ा और वे विक्षिप्त सी हो गईं—

सुनतहि यशुमति है गई बौरी । ता ज्वालहि पूछति उठि दौरी ॥

आये श्याम सत्य कहु भैया । मोहु दिखावहु नेऊ कन्हैया ॥

निज लालन को कंठ लगाऊं । दुसह विरह को ताप नसाऊं ॥

कह अब गहर करत वेकाजहि । भेटहु बेगि सकल ब्रजराजहि ॥

यशोदा के उमड़ते वात्सल्य ने श्रीकृष्ण से मिलने की आतुरता दिखाई, क्या स्थितिपरिवर्तन से माता का वात्सल्य मंद पड़ सकता है ? किंतु नंद ने यथार्थ के प्रति आशंका व्यक्त थी—

×

×

×

अब हरि होहि न ब्रज की नाई ।

मणिन खचित बैठत सिंहासन ।

चवर छत्र कर गहे खवासन ॥

अतिहि भीर नृप वास न पावै ।

द्वारहि ते बहु फिरि फिरि जावै ॥

छत्रपतिहि छुरियन विलगावत ।

तह हम सबकी कौन चलावत ॥

छपन कोटि यहु छुँड़ि सगाते ।

क्यों मानै धायन के नाते ॥

अब गोपाल वे नहीं हैं जो ब्रज में थे । अब तो वे द्वारकाधीश हैं । मणिखचित सिंहासन पर आसीन कृष्ण के चारों ओर दासियाँ चँवर डुलाया करती हैं ।

दरवाजे पर इतनी भीड़ कि बड़े बड़े राजा उनके द्वार से लौट आते हैं। वहाँ हमें कौन पूछेगा ? छुपन कोटि यादवों को छोड़कर एक धाय के नाते हमें वे कैसे मान लेंगे ? ऐसा भी हो सकता है कि ऐश्वर्य और वैभव के बीच हमारे जीवन तथा वेशभूषा से उन्हें लज्जा भी आए—

हम कहँ लखि हरि मनहि लजैहँ

परंतु प्रेम के समस्त बुद्धि के ये तर्कवितर्क नहीं टिकते। प्रवास के बाद का यह मिलन है, कितनी आतुरता होगी उसमें ? सब तैयारियाँ करने लगते हैं। कोई कहता है कि हम लोग अलंकरण का सामान कहाँ पाएँगे, इसी तरह जायेंगे, उनके अनुचरों की लात भी खायेंगे लेकिन मिलेंगे जरूर। कोई ग्वाला नृत्य करने लगा। एक एक को बधाई देने लगा मानों उन्हें खोई हुई निधि मिल गई हो। युवतियों के उल्लास का क्या कहना। प्रियतम ही आ गया तो शृंगारोपकरणों से सुसज्जित होने लगीं। पर राधा मलिन वेश में मूर्च्छित पड़ी थीं। मनभावन के आने का समाचार पाकर जाग पड़ीं। एक गोपी ने राधा के सामने ही कहा—

सोरह सहस वरी नृप वारी। कत पूँछहि अब ग्वारि गवारी ॥

राधा मुसकाने लगीं, प्रेमिका के अंतर्भावों को परखिए—

यह सुनि के राधा मुसकाई। पाय पलोटन की सुधि आई ॥

गुंजमाल हित फिरत कन्हाई। मांगत सौ सौ हा हा खाई ॥

कोटिक बरहि न राजकुमारी। मेरी उनकी बातहि न्यारी ॥

बारि चरहि वारी मनभावत। पै परसत सो मन अकुलावत ॥

नाना वस्तु धरहु बरु लाई। चुंवक चिमटत लोहहि जाई ॥

वे नहि मानहि रंक उदारा। श्यामहि केवल प्रेम पियारा ॥

‘कोटिक बरहि न राजकुमारी। मेरी उनकी बातहि न्यारी और सूर की व्याहो लाख धरौ दस कूवरि अंतहि कन्ह हमारो में व्यंजित प्रेम की औदार्य दशा का चित्र सामने आता है। इसी प्रकार अनेक मनोरथों के बीच समस्त वातावरण उल्लसित हो उठा। यह तो रहा मानवजगत् के उल्लास का किंचित् दिग्दर्शन। अब देखिए कृष्णागमन का पशुजगत् पर क्या प्रभाव पड़ा ? जिन गायों को गोपाल ने अपने हाथों चराया—वे श्याम के विरह में सूख गईं।

सुनि हरि नाम सकल अनुरागी। श्रवण उठाय प्रेम रस पागी।

पशु को प्रेम जहाँ अस गावै। नर नारिन की कौन चलावै ॥

ब्रजवासियों के आगमन का समाचार जब कृष्ण को मिला तो वे विवश हो उठे। उनके नेत्रों से भरभर अश्रुधारा चल निकली। कवयित्री के ही शब्दों में—

११ (७०-१)

पुलकित तन कंपित वदन वचन न सकत संभार ।
 सुपन कि धौं है सत्य यह परत नहीं पतयार ॥
 भये जलज लोचन अरुण मोचत जल अतिधार ।
 विसरि गई सब सुधि हरिहि तनहू की न संभार ॥

देवकी ने सँभाला । उन्होंने कहा कि तुम्हारी अन्यमनस्कता का रहस्य आज खुला । रनिवास में भी खबर गई । रुक्मिणी दौड़ी हुई आई । स्त्रीशिरोमणि रुक्मिणी कृष्ण को प्रेममग्न देखकर आनंदमग्न हो उठीं । लेकिन 'कुटिल चातुरी गरब की छाया सत्यभामा जलभुन उठीं । बड़े राजा की लड़की जो थीं । हरि पर व्यंग्य करने लगीं । 'गोपियों के साथ रास कैसे रचाते थे, जरा हम लोगों को भी दिखाओ ।' किंतु व्यंग्य की शिथिल बोलार प्रेमी के मार्ग में व्याघात नहीं उपस्थित कर सकती । कृष्ण 'पद पंकज पावड़ि रहित आप चले तहँ धाय' । ग्वालों के बीच उनके चिरसहचर गोपाल पहुँचे । नटवरवेश के अनुरागी गोपालों ने नृप की वेशभूषा उतार गुंजमाला पहना दी, किसी ने कंधे पर कामरी रख दी और किसी ने सिर पर मोरपंख रखा । किसी ने धनुर्धर वेश में अपने इष्टदेव को मस्तक भुंकाने का संकल्प किया तो गोपालों ने नटवरवेश में सख्यरस का आनंद लेना चाहा, तो क्या वैचित्र्य है ? प्रेम की अनन्यता क्या भक्ति की अनन्यता से कम है ?

प्रेमरत्न में कृष्ण और ब्रजवासियों के मिलनपर्व का आयोजन उदात्त भूमिका पर हुआ है । सर्वप्रथम यशोदा और कृष्ण के मिलन में वात्सल्य का प्रवाह—

चकृत श्याम कल्यो कहँ मैया । तवहि यशोमति लख्यौ कन्हैया ॥
 सपदि परे चरणन पर जाई । दृग जल पद दीन्हे पखराई ॥

यहीं पर कवयित्री ने भगवत्ता को भी सामने लाकर खड़ा कर दिया है । जिन चरणों की पदरेणु को स्पर्श करके ऋषिपत्नी शिला से नारी बन गई, जिन चरणों की सेवा लक्ष्मी करती हैं, वे ही भगवान् कृष्ण यशोदा के चरणों पर शीश भुका रहे हैं । ऐसे स्थलों को देखकर रामचरितमानस का स्मरण हो आता है, जहाँ पग - पग पर गोस्वामी जी ने राम की भगवत्ता एवं ऐश्वर्य के उल्लेख से लौकिक चरित को अलौकिक सिद्ध करने के प्रयत्न में स्वारस्य की चिंता नहीं की ।

यशोदा का हृदय वात्सल्य से उमड़ पड़ा—

कर गहि माता उर लपटायो । कठिन विरह की पीर नसायो ॥
 लाय रही छुतियन ते माता । पुनिपुनि चूँब वदन जलजाता ॥
 मुख मूछन की रेख सुहाई । देखि देखि जननी बलि जाई ॥

प्रेमरत्न और उसकी रचयित्री

८३

जिस कन्हैया को यशोदा ने पयपान कराया उनके मुख पर मूँछों की काली रेखा देखकर बलि बलि जाती हैं। मातृहृदय के शत शत उद्गारों को कवयित्री ने अपने इस लघुकाव्य में नियोजित कर दिया है। इसी प्रकार नंद, गोपी, राधा और गायों के मिलनमहोत्सव को यहाँ जिस पद्धति से वाणी दी गई है, वह सराहनीय है।

ऐसे स्थल पर राधा के रूपसौंदर्य का चमत्कारपूर्ण वर्णन पढ़कर आश्चर्य होता है। सभी राजमहिषियों ने उस अनवद्यांगी की एक भलक देखी, वे विधि को कोसने लगीं—

मने मन कहत कहा विधि कीन्हों। इतनो रूप अहीरिनि दीन्हों ॥
ठौर कुठौर विचारत नाहीं। सठ न दीन्ह नृप घरणिन माहीं ॥
नेक भलक लखि भइ गति ऐसी। नीके निरखत हैं है कैसी ॥

इसी स्थल पर राधाप्रेम की सर्वातिशयता का निरूपण कवयित्री ने श्रीकृष्ण के मुख से ही कराया है। राधा और श्रीकृष्ण में ऐसी एकरूपता है कि एक का दुःख दूसरे का दुःख बन जाता है। रुक्मिणी ने राधा को तप्त दूध पिलाया, श्रीकृष्ण के पैरों में छाले पड़ गए। कारण—

सदा एक रस मन क्रम बानी। राधा मोपै रहत लुभानी ॥
उर में राखत चरन हमारे। ताते परे दूध के छारे ॥

श्रीकृष्ण और ब्रजवासियों के मिलनपर्व के रमणीय चित्र कवयित्री ने मनोयोगपूर्वक चित्रित किए हैं। किंतु इसी बीच कथा एक दूसरा मोड़ लेती है। ऋषियों के आगमन ने मिलन की धारा में अवरोध उत्पन्न किया। वसुदेव देवकी ने उन ऋषियों को भोजन कराया। उन्होंने भगवान् के ऐश्वर्यरूप का निरूपण भी किया। उसी समय वसुदेव ने एक यज्ञ किया।

कुछ दिनों तक कृष्ण ब्रजवासियों के साथ कुरुक्षेत्र में रहे। देवकी ने द्वारका का स्मरण दिलाया और प्रस्थान करने का प्रस्ताव रखा। ब्रजवासी विकल हो उठे। विरह का पारावार उमड़ चला—

विरह व्यथा व्याकुल सकल ब्रजवासी नर नारि।
जित तित ही रोवत सकल परि गयौ हाहाकार ॥

उस समय श्री हरि ने अपनी माया फैलाई। सभी ब्रजवासी चलने के लिये आतुर हो उठे। चारों ओर उदासी छा गई। किंतु यह माया राधा को व्याप्त न हुई क्योंकि वह पूर्णमाया स्वयं ही है। वह वहाँ न हिली न डुली। राजमहिषियों राधा को समझाने लगीं। राधा के हृदय में तो गोविंद बसे हैं, वह वियोग नहीं सह सकती। वह आत्महत्या के विचार से एक सरोवर में प्रविष्ट हो गई। राधा का

प्रेम देखकर सत्यभामा कुढ़ने लगी। उन्हे ऐसा लक्षण दिखाई देने लगा कि राधा अपने साथ श्रीकृष्ण को ले जायँगी। राधा और सत्यभामा में विवाद छिड़ गया।

सत्यभामा ने कहा, 'कुलयुवती की बात ही न्यायी है, वे पति के साथ नेम का निर्वाह करती हैं। जननी जनक जिसे सौंप देते हैं, उसे कुलवधू कभी नहीं छोड़ती। इन बातों से राधा तुम्हें लज्जा नहीं आती, पराये प्रियतम के लिये ऐसी रार मचाती हो।'

राधा ने उत्तर दिया, हे रानी ! कुढ़कुढ़ कर इतना दुःख क्यों बढ़ाती हो। ये गुण कृष्ण को रंचमात्र भी अच्छे नहीं लगते—

इतनी गरव करत मन माही। जनु अरु कोउ जग व्याहो नाही ॥
सकल चहुँ दिसि व्याहो होई। प्रेमपंथ पावत नर कोई ॥

श्याम 'नेम' के वश नहीं, वे 'प्रेम' के वशीभूत होते हैं। कुलवधू और प्रेमिका के इस विवाद में प्रेम और नेम के स्वरूप का स्पष्टीकरण और स्वकीया तथा परकीया की प्रेमपद्धति के भेद का सहज शैली में निरूपण किया गया है। भगवान प्रेम के अधीन है—

हीन वरण कुल जाति न जाने। केवल रहत प्रेमरस खाने ॥
अधम उधारन हरि को बाना। गणिका तारयौ सब जग जाना ॥
विद्या भूति बुद्धि चतुराई। इन बातन रोझत न कन्हारी ॥
तुम प्रेम का मर्म क्या जानो। रुक्मिणी प्रेम की गति और रस को जानती हैं।
इसीलिए ये—

कोटि वर्ष लौं तपत प्रिय विविध भांति करि नेम।
हरि हिरदय आवै नहीं जौ लागि प्रकट न प्रेम ॥

राधा का यह विश्वास है कि श्री कृष्ण ने ब्रजवास छोड़कर द्वारका में वास भी किया तो क्या हुआ, मन से वे सदैव ब्रजजन के पास ही रहते हैं—

कहा भयो हरि द्वारिका वसे छाँड़ि ब्रजवास।
तद्यपि मन में है रहे ब्रजजन ही के पास ॥

इसी स्थल पर कवयित्री ने राधा के मुख से प्रेम की श्रेष्ठता को स्पष्ट कराया है—

प्रगट प्रेम रवि जा उर राजै। तहुँ खद्योत नेम कत छाजै ॥
जौ लागि प्रेम प्रगट नहि अहई। तो लागि नेम जगत जो गहई ॥
प्रेमरतन जवही नर पावै। नेम काच तवही छिटकावै ॥
प्रेमरहित नर सोहहि कैसे। सोम विहीन शर्वरी जैसे ॥

प्रेम रहित नर सोहहि कैसे । विना सरलता साधू जैसे ॥
लाख बात की बात यह करिये बक बकवाद ।
जिहि व्यापै सो जानही प्रेम सुरस को स्वाद ॥

श्री कृष्ण ने भी राधा के प्रेम की महत्ता स्वीकार की और कहा—

प्रेम लह्यौ तिन सब लह्यौ कछु न एक विनु प्रेम ।
लोन विना भोजन निरस प्रेमहीन नर नेम ॥

राधा ने बनवारी से वृंदावन में निवास करने की प्रार्थना की । श्रीकृष्ण ने कहा, 'एवमस्तु' । कौतुकनिधि भगवान् ने इस विवाद को मिटाने के लिये दो रूप धारण कर ब्रज और द्वारका दोनों में निवास किया—

कौतुकनिधि हरि एक अनंता । द्वै तन धारि लये भगवंता ॥
एक द्वारका नृप तन धारी । धरणीहित प्रभु पातकहारी ॥
राधहि ताते संग न लीन्हा । अचल वेष हरि ब्रजहित कीन्हा ॥

इसलिये—

धरि नट रूप राधिका साथा । वृंदावन आये ब्रजनाथा ॥
वृंदावन में कृष्ण की नित्यलीला चल रही है । प्रेमांजनपूर्ण नेत्रों से भक्त युगल लीला के दर्शन से तृप्त होते रहते हैं—

वे राधा माधव सदा ब्रज में करत विहार ।
धन्य सुथल परसत चरण रतन जात बलिहार ॥
ग्रंथ के अंत में फलस्तुति और ग्रंथपरिचय इस प्रकार है—

प्रेमरतन गावहि सुनहिं जे सप्रेम नर-नारि ।
कृष्णगान ते पावहीं सकल सुखन को सार ॥
कवयित्री ने दैन्यप्रदर्शन के साथ ग्रंथ के रचनाकाल और स्थान का निर्देश इस प्रकार किया है—

ठारह सै चालीस चतुर वर्ष जब व्यतित भय ।
विक्रम नृप अवनीश भये भयो यह ग्रंथ तब ॥
माह माह के माह अति सुभ दिन सित पंचमी ।
गायो परम उल्लाह मंगल मंगल बार-बार ॥
कह्यौ ग्रंथ अनुपम जय सत अरसठ चौपई ।
तिहि अर्द्धरु अरु जान, दोहा सोरह सोरठा ॥
काशी नाम सुठाम धाम सदा शिव को सुखद ।
तीरथ धरम ललाम सुभग मुक्ति वरदान छुम ॥

ता पावन पुर माहि भयो जनम या ग्रंथ को ।

× × × ×

कुरुक्षेत्र शुभ थान ब्रजवासी हरि को मिलन ।

लीला रस की खान, प्रेमरतन गायो रतन ॥

इति प्रेमरत्न भाषा समाप्ता ॥

इस प्रकार 'प्रेमरत्न' की रचना संवत् १८४४ वि० अर्थात् सन् १७८७ में माघ मास में शुक्ल पक्ष की पंचमी को मंगलवार के दिन हुई। इसमें ३६८ चौपाइयाँ हैं। छंदसंख्या के संकेत के विवरण खोजविवरणिकाओं में कुछ कुछ भिन्न है।^{२४}

प्रेमरत्न की समीक्षा—'प्रेमरत्न' इतिवृत्तात्मक और वर्णनप्रधान काव्य नहीं है, प्रत्युत यह भावप्रधान खंडकाव्य है। इसमें कथा की विविधता नहीं है। एक छोटी सी घटना को आधार बनाकर प्रेम का स्वरूपनिरूपण कवयित्री का लक्ष्य है। एक गोप के द्वारा कृष्णागमन का समाचार पाकर ब्रजवासियों में कितना उल्लास छा जाता है और यशोदा का वात्सल्य किस तरह उमड़ पड़ता है, इनका रसपूर्ण वर्णन इस ग्रंथ का मार्मिक अंश है। इसमें वात्सल्य, शृंगार और सख्य तीनों की रसधारा प्रवाहित है। ब्रजवासियों के आगमन का समाचार पाकर कृष्ण की प्रेमविह्वलता प्रेम की चरमादर्श व्यंजना मानी जा सकती है। कृष्ण और ब्रजवासियों का कुरुक्षेत्र मिलन (जो इस काव्य में 'पृथक्पृथक्' दिखलाया गया है) प्रेमार्णव है जिसमें कृष्ण का ऐश्वर्यज्ञान निमग्न हो जाता है। प्रवासोपरांत मिलन की चम्पोकर्षता का रूपचित्र प्रस्तुत करना कवयित्री को अभीष्ट है जिसमें ये पूर्णतया सफल हुई हैं। अतः संपूर्ण काव्य में भावों का उच्छल प्रवाह है।

लक्ष्य करने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमरत्न कई दृष्टियों से राम-काव्य-परंपरा के मूर्धन्य ग्रंथ 'मानस' के अधिक समीप है। एक गोप के द्वारा ब्रजवासियों में समाचार फैलाना 'एक सखी सिय संग बिहाई। देखन गई रही

२४. (अ) कह्यो ग्रंथ अनुमान त्रेसठ अरसठ चौपई ।

तेसि अक्षर अठ जानि दोहा सोरठ सोरठा ॥

खोजविवरणिका (सभा) २४२३-२५ ई०, द्वि० प०, सं० ३५६ ।

(आ) कह्यो ग्रंथ अनुमान ज्ञात अरसठ चौपई ।

तिहि अर्थ रु अठ जानि दोहा सोरठ सोरठा ॥

वही, ६२६-३१, द्वि० परि०, सं० २६७ ।

प्रेमरत्न और उसकी रचयित्री

८७

‘कुलवाई’ की याद दिला देता है। कुरुक्षेत्र का मिलन चित्रकूट के राम - भरत - मिलन के अनुरूप है। केवल एक अर्थ में—स्नेह का स्नेह से मिलन। ‘मानस’ का चित्रकूटमिलन काव्यात्मक वैभव की पराकाष्ठा तो है ही, भावोत्सर्ग का अप्रतिम उदाहरण भी है। ‘प्रेमरत्न’ का कुरुक्षेत्रमिलन सहज सरल भावप्रवाह है जिसमें कलात्मक लालित्य अपेक्षाकृत कम है। दोहे - चौपाई की पद्धति का अनुगमन भी मानस का है। प्रारंभ में मंगलाचरण और अंत में फलस्तुति मानस के समान है। और तो और कृष्ण की रानियों द्वारा राधा के रूपसौंदर्य को देखकर ब्रह्मा को कोसना मानस की ग्रामवधूटियों के द्वारा रामवनवास करानेवाले ब्रह्मा को कोसने जैसा है। अतः ‘प्रेमरत्न’ का अभ्येता इन स्थलों पर मानस की भावभूमिका में कुछ क्षणों के लिये पहुँच जाता है।

वैष्णव रसशास्त्र की दृष्टि से ‘प्रेमरत्न’ में वर्णित कुरुक्षेत्रमिलन समृद्धि-संयोग के अंतर्गत आता है। आचार्य श्री रूपगोस्वामी ने ‘उज्ज्वलनीलमणि’ में शृंगारांतर्गत संयोग के चार स्वरूप बतलाए हैं—१. संक्षिप्त संयोग (दर्शन, स्पर्श, गोष्ठमिलन, गोदोहन, चुंबन आदि), २. संकीर्ण संयोग (इसकी तुलना ईन्दुरस से की गई है। इसमें एक ही साथ उष्णता और माधुर्य का अनुभव होता है। इसके अवसर हैं, रास, जलक्रीड़ा, दानलीला, यनुनाजलकेलि, वंशीचोरी आदि), ३. संपन्न संयोग—(प्रवास के बाद का संयोग—भूला, होली, द्यूतक्रीड़ा), ४. समृद्धमत् संयोग (कुरुक्षेत्रमिलन), यही महामिलन भी है।

इसे पूर्णानंद की चरमावधि माना गया है। इसमें प्रेम के आलंबन रसिकशिरोमणि श्री कृष्ण हैं और आश्रय हैं ब्रजवासी। इस दृष्टि से ‘प्रेमरत्न’ का प्रेमवर्णन उज्ज्वलरस के संयोगपक्ष का अन्यतम उदाहरण है।

काव्यरूप की दृष्टि से ‘प्रेमरत्न’ एक सफल काव्य है।^{१५} इसमें कृष्ण का पूर्ण जीवन न ग्रहण कर उसका एक खंड ग्रहण किया गया है। कुरुक्षेत्र में ब्रजवासियों से मिलन कृष्ण के विराट जीवन और काव्यव्यापारों में एक खंड ही तो है। किंतु यह खंड भी स्वतः पूर्ण है जिसमें मानव को एक सूत्र में बाँधनेवाले प्रेम की मार्मिक भाँकी दिखाई गई है। सानुबंध कथा होने के कारण यह प्रकीर्णक रचना से अलग है। कृष्ण के विस्तृत जीवन में से केवल इसी मार्मिक अंश को लेकर लिखे जानेवाले प्रबंधकाव्यों में रत्नकुँवरि का यह काव्य अभिनव प्रयोग है।

२५. खंडकाव्य भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारिच ।—साहित्यदर्पण ।

‘प्रेमरत्न’ में पात्रों के शीलवैविध्य के दर्शन नहीं होंगे। कृष्ण प्रारंभ में ही प्रेमी के रूप में चित्रित है। ब्रजवासियों के प्रेम को स्मरण कर वे कुरुक्षेत्र जाते हैं, वहाँ नंगे पाँव उनसे प्रेमातुर होकर मिलते हैं। काव्य के अंत में उनके व्यक्तित्व का वह अंश अधिक भावपूर्ण है जहाँ वे राधा और सत्यभामा के विवाद को मिटाने के लिये दो रूप धारण करते हैं। इस प्रकार वे राधा के प्रेम की रक्षा और सत्यभामा के आग्रह दोनों को पूरा करने में समर्थ होते हैं। सूर के कृष्ण ब्रजवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान की घूँटी पिलाकर विदा करते हैं, वे द्विधा में नहीं पड़ते। इस काव्य में यशोदा वात्सल्यमयी माँ, नंद वात्सल्य और व्यावहारिक जगत् के शंकाकुल शीलवाले व्यक्ति, रुक्मिणी नारीशिरोमणि और आदर्शपत्नी तथा कुटिला और गर्वपरायण सत्यभामा एवं प्रेमपुच्छलिका राधा के दर्शन होते हैं। इस लघुकाव्य में शीलवैचित्र्य के स्वरूप का निदर्शन संभव भी कैसे है।

‘प्रेमरत्न’ की काव्यभाषा और छंदयोजना कृष्णकाव्य की परंपरा से अलग है। कृष्णकाव्य की भाषा ब्रजभाषा थी, इसके माधुर्य को कृष्णकाव्य प्रणेता कैसे भूल सकते हैं? पर ‘रत्नकुँवरि’ ने इसमें ब्रजभाषा मिश्रित अवधी का प्रयोग किया है। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है किंतु वंदना और प्रार्थना के प्रकरणों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र मिश्रित अवधी का स्वारस्य ही दिखाई पड़ता है। क्रियापद अधिकतर अवधी तथा ब्रजभाषा के और कहीं-कहीं खड़ी बोली के भी हैं। फारसी और उर्दू के शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है। इसमें अवधी की ग्रामीणता में संस्कृत की प्रांजलता ने भाषा को शक्तिशालिनी तथा अभिव्यक्ति के उपयुक्त सज्जम बना दिया है। अवधी के प्रबंधकाव्यों के चिरपरिचित दोहों तथा चौपाइयों का प्रयोग इन्होंने भी किया है। इन्होंने चौपाइयाँ नहीं द्विपदियाँ लिखी हैं। मात्राओं की संख्या तो चौपाइयों की भाँति है पर चरण उनमें दो ही हैं।

अतः ‘प्रेमरत्न’ के रचयिता को लेकर जो भ्रम साहित्यान्वेषकों ने खोज-विवरणाकाश्यों से फैलाया उसका निराकरण अब हो जाना चाहिए। अब उन्हीं खोजविवरणाकाश्यों से यह सिद्ध है कि यह रत्नकुँवरि की रचना है, किन्हीं रत्नदास या रत्नकवि की नहीं। ‘रत्नकुँवरि’ का नाम कृष्णकाव्य की प्रबंधपरंपराओं को समृद्ध करनेवाले कवियों में विशिष्ट है। इनका ‘प्रेमरत्न’ काव्य भावोत्कर्ष की दृष्टि से एक अनुपम खंडकाव्य है।

हिंदी और मलयालम में समान पुर्तगाली शब्द

[वेल्लायणि अर्जुनन्]

पुर्तगाली लोग और भारत

यूरोप से भारत आनेवाले सर्वप्रथम लोग पुर्तगाली थे। वे पंद्रहवीं शती के सबसे अधिक साहसी नाविक थे। उनकी व्यावसायिक तथा धार्मिक गतिविधियाँ अंग्रेजों के आने के समय तक भारत में पनप चुकी थीं। इस कारण भारत की सभी भाषाओं में अंगरेजों के आगमन के पूर्व ही पुर्तगाली भाषा के असंख्य शब्द घुलमिल गए थे। पंद्रहवीं शती से प्रारंभ होनेवाले सांस्कृतिक पुनर्जागरण का भारत में बीजवपन करनेवाले भी वस्तुतः पुर्तगाली ही थे। खेती एवं व्यावसायिक और सामाजिक विकास के क्षेत्र में उनकी देन महत्वपूर्ण थी।

१. सामाजिक संबंध

भारतीय जनता से एकात्म होने के लिये अन्य किसी विदेशी जाति ने इतना प्रयत्न नहीं किया था।^१ भारत के श्रेष्ठ आर्यवर्ग के लोगों से वैवाहिक संबंधों को बढ़ाने में उनको किसी प्रकार की हिचक नहीं थी, वरन् उसको एक आवश्यक तथ्य मानकर चलने की सहिष्णुता भी उनमें वर्तमान थी।^२ पुर्तगाल से भारत भेजे गए राज्यपालों में आलबुकर्क का विशिष्ट स्थान है। उसी ने भारतीयों से वैवाहिक संबंध स्थापित करने की सफल नीति विशेषरूप से अपनाई थी।

१. 'देयर इज नो कोलोनिअल नेशन व्हिच हैज लेस रेशल इकोटिज्म ऐंड इज मोर इन्क्लाइंड टु 'आइडेंटिफाई इटसेल्फ विद इंडिजिनस पापुलेशन दैन द पोर्चुगीज।'—इंफ्लुएंस आव पोर्चुगीज वोकेबुलस इन एशियाटिक लैङ्ग्वेजेज, एम० एस० आर० दालमदो, अनु० ए० एक्स सोरेश, पृष्ठ अठारह।

२. 'द पोर्चुगीज हैव आलवेज बीन इन दिस मैटर वेरी टालरेंट ऐंड दिस इज वन आव द ग्रेट कालिटीज आव कालोनाइजर्स ऐंड दे उड नेवर थिंक इट ए डिस्ग्रेस टु कंटैक्ट मैरेज प्लायसेज विद द हाइकास्ट्स आव इंडिया, द पीपुल विद द प्योरेस्ट आर्यन ब्लड इन देयर बैस'—अशिया दा ओर्ता इउ स्यु तेंपो—कौंदे दे फिकालो, पृ० १६१।

१२ (७०-१)

उसका विश्वास था कि पूर्वी और पश्चिमी देशों के बीच मैत्रीसंबंध बनाए रखने के लिये शासकों और शासितों के बीच यह सामाजिक गठबंधन बहुत ही अनिवार्य है और कोरे साम्राज्यवाद से विशेष लाभ नहीं है ।^{१२}

२. धार्मिक कार्यक्रम

केवल व्यावसायिक और सामाजिक संबंधों के जुड़ने मात्र से पुर्तगाली लोग संतुष्ट नहीं थे। ईसाई धर्म के प्रचार - प्रसार के लिये भी उन्होंने जीतोड़ मेहनत की थी। उनका इरादा तो धर्म के माध्यम से अपनी संस्कृति को भारत में कायम करना था। अन्य सभी कामों से बढ़कर उन्होंने धार्मिक कार्यकलापों को प्राधान्य दे रखा था ।^{१३}

मिशनरियों के इस प्रकार के धार्मिक प्रयासों का इतिहास वस्तुतः पुर्तगाली भाषा के भारत में प्रचार के इतिहास से भिन्न नहीं ।^{१४} देशी भाषाओं में पुर्तगालियों के धार्मिक ग्रंथों का रूपांतर करना आरंभ होते ही पुर्तगाली शब्द भारतीय भाषाओं में घुसने लगे थे ।

३. व्यावसायिक संबंध

भारत के लिये कई सर्वथा नवीन उपकरण और गृहस्थी की कई चीजें पुर्तगालियों के द्वारा भारत में लाई गई थीं। वे वस्तुएँ व्यापार के उद्देश्य से भारत में लाई गई थी। मेज, अलमारी, सोफा, इस्त्री, कारबन, तैलिया, पीपा बाल्टी, वायलिन, आदि घरेलू वस्तुएँ पुर्तगालियों की ही देन है ।

३. 'द डिसनिंग माइंड आव अलबुकर्क फाउंड नो बेटर मीन्स आव मीटिंग दुगेदर द ईस्ट एंड द वेस्ट एंड कंसालिडेटिंग द एंपायर व्हिच ही वाज फाउंडिंग दैन बाइ फ्यूजन आव द कांकररी एंड द कांकर्ड एंड दुवर्ड्स दिस एंड ही कांट्रैक्टड आल हिज एफर्ट्स ।'

—एस० एस० आर० दालगदो, पृ० अठारह ।

४. 'द पोर्चुगीज कालोनाइजर्स इन प्रिफरेंस टु आल अदर मेथड्स मेड यूस आव रेलिजस प्रोपैगैंडा ऐज द मोस्ट एफेक्टिव एंड एंड्योरिंग वे इन इंट्रोड्यूसिंग देयर कल्चर ।'—वही, पृ० उनतीस ।
५. 'द हिस्टरी आव द स्प्रेड आव पोर्चुगीज मिशनरी ऐक्टिविटीज इज इन ऐन ईक्वल मेजर, अप टु सर्टेन प्वाइंट द हिस्टरी आव डिफ्यूजन आव पोर्चुगीज लैंग्वेज ।'—वही ।

४. कृषिपरक संबंध

पुर्तगाली लोग भारत की खेती के मामले में भी ध्यान दिया करते थे। यूरोप से कई प्रकार की नई नई तरकारियाँ और वनस्पतियाँ, फल आदि उनके द्वारा भारत में लाए गए। अनन्नास, काजू, बैंगन, संतरा आदि चीजों के भारत आगमन की कथा भी यही है। विशेष किस्म के आम भी वे भारत में लाए।^६

पुर्तगालियों के भारतीयों के साथ इस बढ़ते संबंध ने पुर्तगाली भाषा को भारतीय जनजीवन में आत्मसात् होने का अवसर दिया। ईस्वी सन् १४९७ में वास्कोडिगामा के नेतृत्व में पुर्तगालियों की एक टोली मलाबार के कालिकट में उतरी थी। उसके बाद उन्होंने १५१० में गोआ और १५३७ में बंगाल, डामन व ड्यू पर अधिकार जमाया। इसके साथ साथ उनकी ताकत बढ़ गई। इस परिस्थिति में पुर्तगाली भाषा का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

पुर्तगालियों का प्रारंभ में केरल और बाद में बंगाल, गोआ आदि जगहों में अड्डा जमाने के कारण हिंदी में पुर्तगाली शब्दों का समावेश, बँगला, मराठी, मलयालम आदि भाषाओं के संपर्क के कारण ही रहा होगा। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक डा० उदयनारायण तिवारी^७ का यह अनुमान कि हिंदी में पुर्तगाली शब्दों का समावेश बंगला के माध्यम से हुआ, समीचीन ही लगता है।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या^८ के अनुसार बंगला में सौ के करीब पुर्तगाली शब्द प्रचलित हैं। डा० दालगदो^९ ने बताया है कि हिंदी में व्यवहृत पुर्तगाली शब्दों की संख्या ४८ है। परंतु डा० कैलाशचंद्र भाटिया^{१०} ने उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि ६६ के लगभग पुर्तगाली शब्द हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। इनमें से कई शब्दों का संक्रमण मराठी और दक्षिणी भाषाओं के माध्यम से हिंदी में हुआ हो, यह संभव है। पुर्तगालियों का सीधा संबंध दक्षिण भारत से होने के

६. द एक्सेलेंस आव द गोआ मैंगोज इज स्टेटेड टु बी द केयर ऐंड स्किल आव द पोर्चुगीज जेसुइट्स'—हाब्सन-जाब्सन, ग्रंडर मैंगो।

७. हिंदी भाषा का उद्गम और विकास—डा० उदयनारायण तिवारी, पृ० २१६।

८. दि ओरिजिन ऐंड डेवलपमेंट आव् बंगाली लैंग्वेज (१९२६)—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० २१४।

९. इन्फ्लुएंस आव् पुर्तगीज वौकेबिज इन एशियाटिक लैंग्वेजेज—दालगदो, पृ० ४२६-३०।

१०. हिंदी में प्रयुक्त पुर्तगाली शब्द - डा० कैलाशचंद्र भाटिया, अभिनव भारती, वर्ष १, अंक १, पृ० ६-१२।

कारण तमिल, तेलुगु, कन्नड़, और मलयालम में बहुत अधिक पुर्तगाली शब्द पाए जाते हैं। सबसे अधिक संख्या में पुर्तगाली शब्द मलयालम भाषा में पाए जाते हैं।^{११} पुर्तगालियों का भारत के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा केरल से अधिक संपर्क रहा था, इस कारण से ही मलयालम में इतने अधिक पुर्तगाली शब्दों का समावेश हो गया है, ऐसा दालगदो^{१२} का कथन है। अतः केरल में पुर्तगीज और मलयालम के संपर्क की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन इस दिशा में बहुत ही अनिवार्य है।

पुर्तगीज और केरल

१४६७ में वास्कोडिगामा के कालिकट (सूल नाम कोषिकोट) पहुँचने के बाद केरल में पुर्तगालियों का इतिहास प्रारंभ होता है। पहले उनका उद्देश्य केवल व्यापार था, परंतु बाद में साम्राज्य स्थापित करना भी उनका लक्ष्य हो गया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होंने दो तीन तरीके अपनाए। पहला कार्य जो उन्होंने किया, वह था स्थानीय सामंतों और शासकों के पारस्परिक झगड़ों में दखल देना और किसी एक का पक्ष ग्रहण कर दूसरे को हराना और इस तरह अपनी शक्ति एवं प्रभाव को बढ़ाना। इससे उनको भारतभूमि पर स्वत्व भी प्राप्त होता था। उनका दूसरा कार्य था ईसाई धर्म का प्रचार और उसके द्वारा देश की संस्कृति पर गहरा असर डालने का प्रयत्न। उनका तीसरा उद्देश्य स्थानीय लोगों से विवाहसंबंध स्थापित कर पुर्तगाल के समर्थकों की एक नई पीढ़ी को जन्म देना था। किंतु परिस्थितियों के अनुकूल न होने के कारण स्थायी रूप से अपना अधिकार जमा सकने में इन सभी तथ्यों ने उनका साथ नहीं दिया, परंतु फिर भी 'दो से अधिक शताब्दियों तक कायम रहनेवाले उनके संपर्क ने केरल के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास पर अमिट छाप छोड़ी है। भाषा और

११. दालगदो इंफ्लूएंस आव् पुर्तगीज बौकेबिलज इन एशियाटिक लैंग्वेजेज नामक शोधग्रंथ में कहते हैं कि मलयालम में २६१ पुर्तगीज शब्द प्रचलित हैं (पृ० ४८८-४९०)। अपने 'केरल भाषाविज्ञानीयम्' नामक ग्रंथ में डा० गोदवर्मा ने स्पष्ट किया है कि कालांतर में इनमें से कई शब्द लुप्त-प्राय हो गए और अब केवल १५० पुर्तगीज शब्द ही मलयालम में चालू हैं। इनमें आधे से अधिक शब्द हिंदी में प्रयुक्त नहीं होते (पृ० २०६)।

१२. "दिस एक्सपेंशन आव् द पोर्चुगीज लैंग्वेज ओवर मलाबार ड्यूरिंग द पास्ट सेंचुरीज इज एस्टाउंडिंग।"—इंफ्लूएंस आव् पोर्चुगीज वाकेबुलस इन एशियाटिक लैंग्वेजेज—दालगदो, पृ० बत्तीस।—

साहित्य के विकास के लिये भी यह सब सहायक सिद्ध हुआ है।^{१३} इन तथ्यों के कुछ पहलुओं पर विचार करना यहाँ समीचीन लगता है।

आरंभ से ही पुर्तगालियों ने केरल के कई केंद्रों में अपना अधिकार जमाया था। स्थानीय शासकों के पारस्परिक झगड़े में भाग लेकर धार्मिक फूट पैदा कर विजय प्राप्त करना इनकी एक नीति थी।^{१४}

कोपिकोट के सामूतिरि (कालिकट के राजा सामूतिरि कहलाते हैं) के साथ पहले उनका झगड़ा हुआ तो भी कोलत्तिरि^{१५} और कोच्चि के राजाओं से उन्होंने स्नेहसंबंध स्थापित किया। सामूतिरि और कोच्चि के बीच जो संघर्ष चल रहा था, उसने कोच्चि को पुर्तगालियों के चंगुल में फँसाया। इस तरह कोच्चि में उनका अड्डा जम गया। इसके अनंतर देशिगनादु^{१६} वेण्णादु^{१७} आदि छोटे छोटे राज्यों से भी उन्होंने मित्रता बढ़ाई। काली मिर्च, इलायची, अदरक, आदि चीजें इकट्ठा करने के लिये और उनके व्यापारिक संबंध चलाने के लिये वे गांवों में घूमा करते थे। वहाँ के सामंतों और छोटे छोटे नरेशों से भी उनका संपर्क बढ़ गया।^{१८} इस बीच कोरलम् और कोच्चि में उन्होंने अपने किले भी बनवाए। जहाँ कहीं उनका वश चला, वहाँ पर धर्म का प्रचार, गिरजाघर एवं खिमिनारी की स्थापना आदि करने में उन्होंने कुछ कसर नहीं उठा रखी। कन्याकुमारी से कोच्चि तक के समुद्र तट के इलाकों में अनगिनत लोगों को उन्होंने ईसाई धर्म में मिलाया।^{१९}

पुर्तगालियों की इन करतूतों ने एक नए सांस्कृतिक समन्वय के लिये मार्ग प्रशस्त किया। देशवासी कई बातों में विदेशियों का आंधाधुंध अनुकरण करने लगे। लड़ाई के तौरतरीके ही सबसे पहले अनुकरण के कार्य बने। पुर्तगालियों की

१३. आधुनिक मलयालम-साहित्यम्—पी० के० परमेश्वरन नायर, पृ० १०१।

१४. “दे (पोर्चुगीज) यूज रिकलफुली द टेक्नीक आव इंटरवेंशन इन लोकल डिस्प्यूट्स बाइ साइडिंग विद वन लोकल पार्टी आर ऐनदर ऐंड फ्लेड अपौन द रेलिजस डिफरेंसेज आव हिंदूज ऐंड मुस्लिम्स ह्वेन एचर दे कुड।”
— द इंडियन हेरिटेज, प्रो० हुमायूँ कबीर, पृ० २२।

१५. सत्रहवीं शताब्दी तक केरल में विद्यमान रहनेवाले छोटे छोटे राज्य। बाद में इनका विलय, तिरुवितांकूर और कोच्चि में हुआ और उसके अनंतर ये संयुक्त केरल प्रांत में मिलाए गए।

१६. कोच्चि राज्यचरित्रम्—के० पी० पद्मनाभ मेनोन, पृ० ८४।

१७. मलाबार मेनुएल—लोगन्, पृ० २८४।

नई बंदूकों और तापों ने केरल की युद्धसंबंधी पुरानी प्रणालियों में आमूल परिवर्तन लाने में मदद की। पुर्तगाली सेनानायकों की देखरेख में यहां के लोग भी लड़ाई की नई तरीकों का प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे। इस विशेष परिस्थिति में मलयालियों को पुर्तगाली और पुर्तगालियों को मलयालम पढ़ने की बहुत बड़ी जरूरत महसूस हुई।

प्रसिद्ध इतिहासकार स्वर्गीय के० एम० पणिककर ने स्पष्ट किया है कि इस तरह भाषा के पारस्परिक अध्ययन का नतीजा यह निकला कि केरल के राजाओं के कूटनीतिक और प्रशासनिक कार्यों का माध्यम पुर्तगाली भाषा हो गई। इससे भी आश्चर्यजनक बात यह थी कि कोच्ची के कई राजा पुर्तगाली भाषा में धारावाहिक रूप में बोल सकते थे।^{१८} कुछ समय बाद केरल में आए निहोफ नामक डच राज्यपाल ने लिखा है कि 'चैपकशेरी' के राजा से बातचीत करते समय राजा के पुर्तगाली भाषा में पारंगत होने के कारण उनको किसी दुभाषिए की जरूरत नहीं पड़ी।^{१९} एल० एस० एस० ओ० माले^{२०} के अनुसार पुर्तगीज लोगों के केरल छोड़ने के बाद भी केरल के स्थानीय राजाओं के बीच पुर्तगाली भाषा कूटनीतिक संबंध का माध्यम बनी रही।

राजनीतिक और व्यापारिक संपर्क के लिये पुर्तगीज अफसरों के मलयालम पढ़ने के कारण दुभाषियों की संख्या बढ़ गई। कोल्लम, कोची, कोपिकोट आदि व्यापारिक केंद्रों के पुर्तगाली लोग उन प्रदेशों की स्त्रियों के साथ शादी करने लगे। उनकी संतानें मलयालम और पुर्तगाली को मिलाकर एक मिश्रभाषा बोलती थीं।^{२१} इस सुदीर्घ संपर्क के कारण कई पुर्तगाली शब्द मलयालम में और कई मलयालम शब्द पुर्तगाली में घर कर गए। केरल की बोलचाल की भाषा के एकीकरण और साधारणीकरण के लिये यह संपर्क बहुत ही सहायक हुआ।^{२२} भाषावैज्ञानिक दृष्टि से यह संमिलन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

पुर्तगालियों के धार्मिक प्रचार के आंदोलन ने एक गहरा सांस्कृतिक परिवर्तन उपस्थित किया। कैथलिक धर्म के प्रचार के लिये जेस्यूट मिशनरियों ने

१८. मलावर ऐंड पुर्तगीज — के० एम० पणिककर, पृ० २१०।

१९. कोची राज्यचरित्रम् — के० पी० पद्मनाभ मेनोन, पृ० ६३।

२०. माडर्न इंडिया ऐंड दि वेस्ट — एल० एस० एस० ओ० माले, पृष्ठ ४७।

२१. आधुनिक मलयालम - साहित्यम् — पी० के० परमेश्वरन् नायर, पृ० १०३।

२२. साहित्य चरित्र प्रस्थानड्डलिल्लुटे — प्रो० पी० जे० पंडणी, पृ० ७३७।

धार्मिक पाठशालाओं (सिमिनारी) की स्थापना की। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि सोलहवीं शताब्दी के अंत तक केरल में कोट्टंगल्लूर, चेन्नममंगलम, वैप्पिन-कोट्ट, उदयंपेरूर आदि स्थानों में ऐसी सिमिनारियों वर्तमान थीं।^{२३} इन धार्मिक पाठशालाओं में पुर्तगाली और मलयालम दोनों पढ़ाई जाती थीं। केरल के कई ईसाई लोग इन पाठशालाओं में धर्मसंबंधी अध्ययन करते थे और पुर्तगाली-मिश्रित मलयालम में धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद करते थे।^{२४} इन सिमिनारियों में धार्मिक शिक्षा देनेवाले पुर्तगाली मिशनरी लोग भी मलयालम का अध्ययन करते थे।^{२५} यह भाषापरक आदानप्रदान मलयालम भाषा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय खोलता है। मलयालम की नवीन गद्यशैली के विकास के लिये पुर्तगीज भाषा का संपर्क बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ। साथ ही पुर्तगाली शब्दों के समावेश के कारण मलयालम शब्दभंडार भी समृद्ध हो गया।

इस तरह मलयालम में आए हुए पुर्तगाली शब्द सोलहवीं शताब्दी में सर्वत्र प्रचलित थे। परंतु बाद में उनकी संख्या कम होती गई। कालांतर में कई शब्दों का प्रयोग अदृश्य हो गया। परंतु फिर भी अनेक शब्द आज प्रयोग में लाए जाते हैं। इनमें आधे से अधिक शब्द हिंदी में प्रयुक्त नहीं होते, मलयालम में उनका प्रयोग अब भी होता है। इस कारण आगे हम केवल उन्हीं पुर्तगाली शब्दों पर विचार करेंगे जो हिंदी और मलयालम में समान रूप से प्रचलित हैं।

पुर्तगाली	हिंदी	मलयालम
Agosto	अगस्त	आगस्टु ^{२६}

२३. मलाबार पेंड पोर्तुगीज — के० एम० पणिककर, पृ० ११७।

२४. १६०० ई० में मिशनरियों द्वारा लिखा गया 'उदयंपेरूर सुन्दोसिले कानोनिकल' नामक गद्यग्रंथ इसका अच्छा उदाहरण है।

२५. ये मिशनरी लोग भारत के अन्य भागों में और विदेशों में भी धार्मिक प्रचार के लिये आया करते थे। इस कारण से मलयालम तथा अन्य द्रविड़ भाषाओं के शब्द अंगरेजी एवं दूसरी भारतीय भाषाओं में स्थान पाने लगे। चुरूट्टु (चेरूट्टु), बेट्टिला (beetle), पंतल (पण्डाल), मांगा (mango) कालिको (calico), कालिकट में बना होने के कारण ; फेरिङ्गी (feringhee फिर्गंगी) आदि कई शब्दों का इतिहास इस दृष्टि से पठनीय है।

२६. अंगरेजी साल का आठवाँ महीना। पुर्तगाली शब्द अगस्तो अंग्रेजी में आगस्ट बन गया। परंतु हिंदी और मलयालम में यह शब्द सीधे पुर्तगाली से ही प्रचलित हुआ।

Achar	अचार	{ अचार । अचारूँ, अन्चारूँ ^{२७}
Ananas	अनन्नास	अनन्नासुँ, अनन्नासु ^{२८}

२७. इस शब्द को मलय भाषा का भी माना जाता है, पर मलय से पूर्व यह पुर्तगाली में मिलता है। मलयालम में यह शब्द सार्वजनिक हो गया है।
उदाहरणः—१-नारङ्गा अचारूँ मोरूँ उण्टेंकिळु ऊणु केममायि । (बोली)
२-नल्ल नेल्लिकक अचारूँ आरोग्यन्तिनु नल्लताणु । (बोली)

२८. वास्तव में यह एक अमरीकी शब्द है। अमरीका के पेरू, ब्रजील आदि राज्यों में 'ननस' या 'नना' शब्द पाइन एप्पल के लिये बहुत पहले ही प्रयुक्त होता था। दालगादो साहब लिखते हैं—“इट इज ऐन अमेरिकन वर्ड (द पेरुवियन 'ननस' एकाडिंग दु कैदिदो दे फिग्युरेदो, बट एकाडिंग दु यूल एंड बनेल, ब्रजीलियन 'नना' आर 'ननस', इटोव्यूस्ड बाइ पोर्चुगीज इनटु द ईस्ट दुगेदर विद द प्लांट ।”—इन्फ्लुएंस आव पोर्चुगीज वोकेबुलस इन एशियाटिक लैंग्वेजेज, पृ० १७।

सर जार्ज वाट् का मत भी यहाँ उल्लेखनीय है “द स्पेनियर्ड्स काल्ड इट 'पिनस' बिकाज आव् इट्स रिजेंब्लेंस दु द पाइन-कोन, बट द पोर्चुगीज अडेप्टेड दु देयर ओन टंग इट्स ब्रजीलियन नेम 'ननस' एंड काल्ड इट 'अननस,' ए वर्ड ह्विच इन सम फार्म आर अदर हैज एकापैनीड द प्लैंट थू आउट द वर्ल्ड ।”—द कमर्सल प्रोड्यूसेज आव् इंडिया, भा० १, पृ० २३६।

इतिहास से पता चलता है कि बादशाह जहाँगीर के जमाने में अनन्नास बहुत मशहूर हुआ था। जहाँगीर की डायरी में इसका उल्लेख मिलता है—“आइ शैल सेंशन वन् फ्रूट इन पर्टिकुलर, द 'अनानास' (पाइन ऐपल), बीइंग एमंग द मोस्ट डेलिशस आव् दोज रिअर्ड इन द आइलैंड आव् फ्रेंगुइर्स (पोर्चुगीज), आव् फ्रूट दिस सेम गार्डेन हैज बीन बीन इन ए रीजन दु हैव प्रोड्यूसड नियर्ली वन हंड्रेड थाउजेंड ।”—मेमोयर्स आव् द एंपरर जहाँगीर, अनु० मेजर डेविड ग्राइस, कलकत्ता, १६०४, पृ० २२।

मलयालम में अनन्नास का दूसरा नाम पुन्तिच्चक्क है जिसका अर्थ है पुर्तगाल का कटहल या फल।

हिंदी और मलयालम में प्रयुक्त पुर्तगाली शब्द

६७

Amen	अमीन	आमीन्, आम्प्यन् ^{२९}
Almario } Armario }	अलमारी, आलमारी	अलमारि, अलमार ^{३०}
Hospital	अस्पताल	आस्पत्रि, आशुपत्रि ^{३१}
Aia	आया	आय ^{३२}
Alfinete	आलपिन	आल्प्पिन्नु, पिन्नु ^{३३}

२९. मलयालम में इस शब्द के अर्थ में थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है। टैक्स वसूल करनेवाला छोटा कर्मचारी (टैक्स कलक्टर) अर्थ में 'अमीन' या 'आम्प्यन' शब्द मलयालम में प्रयुक्त होता है। हिंदी में यह न्यायालय का वह कर्मचारी है जो बाहर का काम करता हो, जैसे कुर्की करना, भूमि नापना, किसी स्थानविशेष का निरीक्षण करना आदि। इस शब्द को अरबी भाषा का भी माना जाता है।

३०. १-ओरू कण्णटि अलमार निरथे पुस्तकड्डल। सी० वी० रा०, पृ० २१०।

२-बलियोरू इरुम्पु अलमारि आ मुरियुटे मूलथिल् वच्चिदुण्डु। मौ० च० च०, पृ० १३।

३१. इसकी व्युत्पत्ति अंगरेजी 'हॉस्पिटल' शब्द से मानी जाती है। पर, ऐसा हो सकता है कि यह पुर्तगाली से सीधे अंगरेजी में आया हो। उदाहरण, १-तिरुवन्नपुरन्ते जनरल् अद्देहन्ते प्रवेशिप्पिच्चिरिक्कुन्नु।

— के० कौ०, १० मार्च १९६३।

२-कण्णास्पत्रिक्कु अदुन्ताणु अद्देहं तामासक्चिरुन्नतु। — जी० स०, पृ० ७१।

३२. १-कुट्टिकले आथये एल्प्पिच्चिदु माधवि आप्पीसिलेक्कु पोथि। — च० का०, पृ० ३४।

२-अम्पेयैकाल् आथयोडु एनिकक् कटम्पादुण्डु। — कू० म० पृ०, ६७

३३. मलयालम में 'पिन्नु' शब्द अधिक प्रचलित है। पहले अल्प्पिन्नु का प्रयोग किया जाता था, पर कालांतर में आल् लुस हो गया और केवल पिन्नु उसी अर्थ में चलने लगा। जैसे, कटलासिल ओरू पिन्नु कुन्ति वच्चु। (बोली)

१३ (७०-१)

Ata	आत	आन्त ^{३४}
Estirar	इस्ती	इस्तिरि, इस्त्रि ^{३५}
Coronal	कर्नल	केणल् ^{३६}
Caju	काजु	काजु, कशु ^{३७}
Casa	काज	कास ^{३८}
Carabine	कारबन	कारबण ^{३९}

३४. शरीफा, सीताफल के लिये 'आत' शब्द मलयालम में प्रयुक्त होता है। आजकल इसे 'आतकका' या 'आतचचका' भी कहते हैं। का (काथ्) का अर्थ है फल। गांवों में आतकका भी कहते हैं। जैसे—१--मुत्तुल्ल आतचचक। २--नल्ल पपुन्त आतचचक।

३५. अच्छन् इस्तिरि तेच्चु कोविलयाक्किथ काक्कि टौसर इडुकयायिरुन्नु।
—जयकेरल, १८-११-१९६१, पृ० २६।

३६. केणल् गोदवर्म राजायुडे अध्यक्षतयिल्।—के० कौ०, १५ अप्रिल, १९६२।
डा० चटर्जी इसका संबंध अंगरेजी कोलोनेल से मानते हैं।—बंगला भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १२४।

३७. तमिल में इसे 'काशुपलम' कहते हैं। पुर्तगीज इन्फ्लुएंस रिवीलड बाई तमिल वर्डज।—प्रो० टी० पी० सीनाजी सुन्दरम्, अण्णमला यूनिवर्सिटी जर्नल, भाग १६, पृ० ११-५। मलयालम में 'कशु अरिट' अधिक प्रचलित है। पुर्तगीजों द्वारा लाए हुए फल अर्थ में परंकिअरिट (फिरंगी का फल) भी कहा जाता है।

३८. बटन का घर, कुरते आदि का वह छेद जिसमें बटन फंसाया जाता है, इत्यादि अर्थों में कास (kasi) शब्द मलयालम में चलता है। दर्जियों के बीच यह शब्द खूब प्रचलित है। जैसे तय्यल पठिक्कुन्नतिन्ने आद्यन्ते पटि कास वरियल् आणु। डिबिया का गिलाफ अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त होता है। जैसे वेल्लिककास (चांदी की डिबिया)।

३९. शेकसीयर ने इसे फ्रान्सीसी भाषा से माना है। हिंदुस्तानी डिक्शनरी, १८६६, पृ० १२७८। पपुन्तयडे ओरु कार्बण कास्पि तय्याराक्कि।—म० रा० वा०, पृ० १६, अगस्त ११, १९६२।

हिंदी और मलयालम में प्रयुक्त पुर्तगाली शब्द

६६

Coch	कोच	कोचु ^{४०}
Capitao	कप्तान	कप्पिन्तान् ^{४१}
Christao	क्रिस्तान	क्रिस्त्यन् ^{४२}
Camar	कमरा	क्यामरा ^{४३}
Catolico	कैथोलिक	कन्तोलिककन् ^{४४}
Camisa	कमीज	कमीस्तु, कम्मीस्तु ^{४५}

४०. डा० चटर्जी 'बंगाली भाषा का उद्गम और विकास' में इसका संबंध अंगरजी कोच से मानते हैं।

० कन्याकुमारीखिलेवकुल्ल प्लपर कोचिच अवर यात्र चेन्नु।

४१. जहाज का अफसर, जहाज चलानेवाला आदि अर्थों में कप्पिन्तान शब्द मलयालम में बहुत अधिक प्रचलित है।

१-डिल्लनायि पुन्न कप्पिन्तान्।—ति० च०, पृ० ४३।

२-आ कप्पलिले कप्पिन्तान् ओरु पोलण्टु कारनायिरुनु। व० पु० पृ० ५१।

३-कप्पिन्तानिल्लातेपु कप्पलेश्वतुपोले।—प० प० कृ०, भा० १, पृ० ४६।

४२. १६वीं सदी के आरंभ से इस शब्द का प्रयोग मलयालम में मिलता है। उस जमाने के पुर्तगाली पादरियों द्वारा लिखे हुए धार्मिक ग्रंथों में क्रिस्तियन (क्रिस्त्यन) शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे—उदय-पेरुरिले क्रिस्त्यन मिषनरिमारुटे ओरु योगं कटि।—उदयपेरुर सनहदोसिले काननुकल, १६१७, पृ० ५१।

२-मलंकरयिले क्रिस्त्यान्तिकल मुषवन्।—व० पु०, पृ० ५०।

४३. ओरु क्यामरयुं तोलिलिट्टु तोडुडु वक्कत्ताकटे जोसफ नटन्नु वोवुकयायिरुन्नु।—वि० क०, पृ० ६३।

४४. १-कन्तोलिककरुटे संख्य इविटन्ते जनसंख्ययिल ओट्टु मोशमल्ल।—के० कौ०, २० मार्च, १९६३।

२-ओरु करालिककन्टे मनोभाव।—चै० सु०, पृ० ३७।

४५. एस० के० पोट्टकाट्टु पी० सी० कुट्टिकृष्णन आदि प्रसिद्ध मलयाली कहानी-कारों की अनेक कहानियों में कमीस्तु शब्द का प्रयोग मिलता है।

उदाहरण—

१-नील कम्मीस्तुं वेल्ल पैजामयुं इट्ट अवल् ओरु पंजाबी पेयणायिरिककुमेन्नु गान करुति।—च० का०, पृ० ७१।

२-कम्मीस्तुं कालुरयुं पट्टाणिकल्लले धरिक्कुन्नुत्।—शारदा०, भा० १, पृ० ३६।

१००

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

Cruz	क्रूस	कुरिशु, क्रूसु ^{४६}
Couve	कोबी, गोबी, गोभी	गोबि ^{४७}
Chave	चाबी	चावि ^{४८}
Chapa	छाप	चाप्प ^{४९}
Janela } janella }	जंगला	जन्नल् ^{५०}
Tabaco	तंबाकू	तम्पाक्कु, तम्पाक्कु ^{५१}

४६. १-मूकमाणिकिल मुच्चन्तिल् वणिक्कुं एकमुखमां कुरिशिने मुन्नुवान् ।

—ओ० कु०, पृ० ८८ ।

२-पात काणिकुं कुरिशे जयिकुक ।—ओ० कु०, पृ० ८६ ।

४७. १-गोबि कोण्डुल चट्टिणि रसमाथि तोन्नि ।—अ० वा०, पृ० ७१ ।

२-गोबि, तक्वालि, मुट्टकोस तुटंगिथ शीम मलक्करिकल् ।—क० शा०, पृ० २६ ।

४८. १-वण्टिच्चक्रन्तिन्टे चावि ऊरि वीणु ।—क० म०, पृ० १७ ।

२-सैक्किलिन्टे चावि । (बोली)

४९. मलयालम इंग्लिश डिक्शनरी, डा० गुंडर्ट, पृ० ३५२ ।

२-चाप्प इडुक, चाप्प अटिक्कु आदि ।

५०. १-जन्नलिन्नपिकलिल् वन्नलक्कुन्नू नित्यं ।—प० प० क०, भा० १, पृ० ३६ ।

२-जन्नलिलूटे निलविंटे ननुन्त रश्मिकल ऊन्नु वीणु कोण्टिरुन्नु ।—अ० वा०, ६४ ।

५१. मलयालम में तम्पाक्कु या तम्पाक्कु एक सार्वजनिक शब्द है । इसे पुकयिला भी कहते हैं । इस शब्द को अंगरेजी का भी माना जाता है, पर अंगरेजी के आगमन से पूर्व यह मलयालम में प्रयुक्त होने लगा था—

१-नल्ल जाफ्ना तंपाक्कु कोण्डोन्नु सुखमाथि मुरुविक ।—आ०, पृ० ५८ ।

२-तम्पाक्कु व्यवसायं अविटे वल्लरे वलन्निट्टुण्डं ।—म० ना०, पृ० ३१ ।

१६ वीं सदी में भारत के संबंध में पाश्चात्यों द्वारा लिखी गई ऐतिहासिक पुस्तकों में भी इसका उल्लेख मिलता है—

१-“द रेवरेंस फ्राम टबाको (इन हाल) इज नाइन थाउजेंड सेवन हंड्रेड ऐंड थ्री पताकोज पर इयर ।”—अंतोनिओ वकारो (१६३४), गोहोन दे तिसूरी, चार, पृ० ३३ ।

Toalha
Leilao

तौलिया
नीलाम

तूवाल^{५२}
लेलम्^{५३}

२-“ड्रिंकिंग पाम-वाइन ऐंड यूजिंग तबाको फार स्मोकिंग ।”-फतालिदा दे हिस्ट, बुक फर्स्ट, अध्याय १६, जोआओ रिबेई रो ।

३-“द यूस आव् टोबैको स्प्रेडइन इंडिया ड्यूरिंग द रेन आव् द एंपरर अकबर (सिक्सटीथ सेचु०) । इट वाज इंट्रीड्यूसड इनदु इंडिया, इन आल प्रोवैबिलिटी बाइ द पोर्चुगीज ।”-इन्फ्लुएंस आव् पोर्चुगीज वोकेबुलस इन एशियाटिक लैंग्वेजेज, एम० एस० रुदोल्फो दलगादो, पृ० ३३४ ।

३. “देयर इज ऐनदर ट्री काल्ड ‘पपइरा’ ह्विच प्रोड्यूसेज फ्रूट ह्विच गोज बाइ द नेम आव् ‘ममोज’ इन अमेरिका, ऐंड आव् पपैयाज’ हियर ।”-फ्र० लकेमेंके दा रे सुरिकाओ, भा० दो, पृ० ३६१ ।

४. “इन द प्लेस आव् वाइन आव् ह्विच एज आइ हैव सेड, देयर इज नन, तबाको, ह्विच वी काल हर्वा सैंता इज यूज्ड, दु इट हैव बीन ऐंट्रीड्यूटेड थ्रू आउट द इंडीज सो मेनी वर्चूज, आई कैन्नाट से वेदर रियल आर इमैजिनरी, ऐंड स्पेशली दु द काइंड दैट गोज इन दिस आइलैंड ।”-हिस्ट-ट्रैजिको-मेरिट, भा० चार, पृ० ५४; गैस्पार अर्गो सो (१५६५) ।

५२. १-पट्टु तूवाल कोणदु अवल् मुखं तुटच्चु ।-अ० वा०, पृ० २७ ।

२-तूवाल-तुस्पालोमलेन्नंगमेल्लां मेल्ले ।-इ० प० कृ०, पृ० ३८ ।

५३. लेलम् शब्द मूल पुर्तगाली शब्द से बहुत मिलता जुलता है । १६ वीं और १७ वीं शतियों में मलयालम ग्रंथों में इसका प्रयोग मिलता है । आजकल बोली और अखबारों में भी ज्यादा प्रयुक्त होता है ।

१-गवण्मेंटु लेलं चेच्युन्न साधनंगल ।-के० कौ०, ६ मार्च, १९६२ ।

२-आफीसिले पपय साधनंगल एल्लां लेलं चेचु ।-मा० भू०, १४ मई, १९६२ ।

३-“गिल फर्नादेज दे करवाल्हो रिसीन्ड देम ऐंड सून हैड देम सेट अप इन द मार्केट प्लेस (आव् कोचिन) ह्वेयर दे होल्ड लिलाओ (आक्शन)”-दिओगो दो कॉंतो; दिस० छः-दस-६ । (कोटेड इन ‘इन्फ्लुएंस आव् पोर्चुगीज वोकेबुलस इन एशियाटिक लैंग्वेजेज) ।

१०२

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

Foguete	पटाका	पटक्कु, पटक्क ^{१४}
Papaia	पपीता, पपैया	पप्पक्क, पप्पाय ^{१५}
Pipa	पीपा	वीप्प ^{१६}
Pistol	पिस्तौल	पिस्टोल ^{१७}

५४. १-दीपावलि दिवसं आकयाल् कुट्टिकल पटक्कं पोट्टिच्चु रसिक्कुक्कयाणु ।—
का० क०, पृ० ४१ ।

२-एरिप्पटक्कुं मालप्पटक्कुं एल्लां शेखरिच्चु ।— रे० वा०, पृ० ५१ ।

३-ह्वाट थियू मोस्ट आच् देम इन्दु कन्फ्यूजन वेयर द 'फोग्युट्टेस' ऐंड
फायर बांक्स ह्विच द टर्कस यूज्ड ऐट द फर्स्ट आन रश ।"— जोआओ
दे बर्रोस, चार-सात-१२ ।

५५. मलयालम में 'पप्पक्क', 'पप्पाय' दोनों रूप चलते हैं । जैसे—

१-पपुन्त पप्पक्का नल्ल जीवकांशमुल्ल ओरु फलमाणु । आ० र०,
पृ० ४१ ।

२-पप्पायं कोण्डुल्ल तोरन् रुचिकरमाणु ।—कु० शा०, पृ० १७ ।

५६. केरल के अनपढ़ ग्रामीणों के बीच भी वीप्प शब्द का प्रयोग होता है ।—

१-क्रीलु वच्चिट्टुल वलिय वीप्प । (वोल्ली)

२-वीप्पयुटे इरुम्पु वलयङ्गल्ल ।—आ० सो० व०, पृ० २७ ।

कुछ पश्चिमी इतिहासकारों ने भी पीपा का उल्लेख किया है—

१-“फार ए पोर्चुगीज नाट दु विश दु पे फार द ट्रांसपोर्ट आच् 'पीपा'
आच् वाइन ।”— दमिआओ दे गौए, मैनुअल चार, पृ० १८ ।

२-“ही हैंडेड ओवर द कूपर्स वर्क शाप दु फ्रांसिस्को दे मेलो पेरेरा, सो
दैट ही माइट गेट हिम दु टर्न आउट बेरेल्स, लार्ज उडेन बाउल्स,
पीपाज ।”— दि ओगो दो कोर्तो, दिस० ४, आठ० ५ ।

५७. इस शब्द को अंगरेजी भाषा का भी माना जाता है ।

१-तन्टे कथिलिरुन्न पिस्टोलिन्टे निर ओपिच्चु ।—ने० जी० सा०,
पृ० ३१ ।

२-आत्मरक्षार्थं अविटे एल्लावरू पिस्टोल कोण्डु नटक्कारुण्डु ।—पु०
लो०, पृ० ५६ ।

हिंदी और मलयालम में प्रयुक्त पुर्तगाली शब्द

१०३

Padre	पादरी	पातिरि ^{५८}
Verruma	वरमा	वरूम, वर्म्म, वेरूम ^{५९}
Biscoito	बिस्कुट	बिस्वकटु, बिस्वक्कटु ^{६०}
Botao	बटन	बट्टण् ^{६१}

५८. १६ वीं शती से यह शब्द मलयालम में प्रयुक्त होने लगा था। १६ वीं शती में पुर्तगाली पादरियों द्वारा लिखे हुए धार्मिक ग्रंथों में इस शब्द का उल्लेख मिलता है।

१-जेस्यूट्स पातिरिकल् यूरोप्यन मातृकयिलुल्ल सिमनारिकल् स्थापिच्च ।
- वेदोपदेश, पृ० २ (१५८) ।

२-क्रिस्त्यन पातिरिमारुटे भाषा सेवनं ।- क्रि० सा० च०, पृ० १०३ ।

३-अण्णैस् पातिरि हंगेरि देशक्कारनायिरुन्नु ।- आ० म० सा०,
पृ० ११६ ।

मनरिक, फारस्ट आदि यात्रियों ने भी अपने भारत के संबंध में लिखे ग्रंथों में इस शब्द का प्रयोग किया है —

१-“द मोर सो इन दिस केस, सिंस द न्यूज दैट द बोरो ‘पाद्रे,’ ह्विच इज दु से ग्रेट ग्रीस्ट, वाज एराइविंग हैड स्प्रेड थू आउट द होल कंट्री ।”
- मैं रीके, टू वेल्स, भा० १, पृ० १६२ ।

२-मेनी फैमिलीज आव् ब्रामिन्य डेली लीविंग यी पोचुर्गीजेज टेरिटरीज एंड रिपेयेरे हिदर (बांवे) फ्राइटेंड बाइ यी ‘पाद्रीज’, हू अपान यी डेथ आव् एनी पर्सन फोर्सेज आल हिज चिल्ड्रेन दु बी क्रिश्चियंस ।” —
फारेस्ट, होम सीरीज सेलेक्शंस, भा० १, पृ० १२० ।

३-“आइ वांट इनदु यी सिटी आव् दायरबिकीर दु विजिट यी ‘फ्रेंच पाद्रीज’ आव् यी आर्डर आव् सेंट फ्रांसिस, हू रिसीन्ड एंड एंटरटेन मी विद ग्रेट सिविलिटी एंड रेस्पेक्ट ।” — हेजेज डायरी, भा० १, पृ० २३२ ।

५९. वर्म्म वच्चु तुलच्चु वरूम कोण्डु तुरन्नु । (बोली)

६०. मधुरं उल्ल बिस्वक्कटु कुट्टिकलक्कु वलरे प्रियमाणु । (बोली)

६१. यह शब्द भी अंगरेजी का माना जाता है। यह शब्द अंगरेजों के आगमन के पहले ही चलता था या नहीं, इस बात का पता अभी तक नहीं चला है। मलयालम में यह एक सार्वजनिक शब्द है।

१-नैल्लोण बट्टणुकल वच्चु पिटिप्पिच्च ओरु कुप्पायं ।- च० का०,
पृ० ७२ ।

२-बट्टण् पोलुं स्वर्णमयं तन्ने ।- अ० वा०, पृ० १५ ।

१०४

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

Bispe	बिशप	विषप्पु ^{६२}
Botelha	बोतल	बॉटिल्लु, बाटिल्लु ^{६३}
Beringla	बैंगन	वपुतिन ^{६४}
Mestre	मिस्त्री	मेस्तिरि, मेसिरि ^{६५}
Marca	मार्का	माक्कु ^{६६}
Mesa	मेज	मेश ^{६७}
Arratal	रतल	रातल, रातलु ^{६८}

६२. १-मलंकरयिले विषप्पुमारेल्लां अवश्यं अरियेगुन्न कार्यं । - आ० म० सा०, पृ० १२५ ।

२-विषप्पन्मास्ते साहित्य सेवनं । - क्रि० सा० च०, पृ० ३६ ।

६३. ओरु बाटिल मपि, ओरु बाटिल मण्येण । (बोली)

६४. बैंगन मलयालम में वपुतिनका या वपुतिनकायू कहलाता है । वपुतिनकायू कालांतर में वपुतिनंग बन गया है । अनुमान है कि यह शब्द पुर्तगीज का रूपांतर है ।

६५. १-वेलुमेस्तिरि तन्टे उपकरणंगल् एदुन्तुकोण्डु नटन्नु । अ० वा०, पृ० ५० ।

२-तय्यल मेसिरि, कोन्तन मेसिरि । (बोली)

६६. अंगरेजी मार्क से भी संभव है, क्योंकि इसका प्रचार अंगरेजों के आने के पश्चात् अधिक हुआ । आन माक्कु^{६६} पेंसिल, कुरुवि माक्कु^{६६} मलमल । (बोली)

६७. १-मेशप्पुरंतु पुस्तकड्डल चितरि किटवकुन्नु । - भा०, पृ० ४३ ।

२-मेश, कसेर पुन्नी उपकरणड्डल् । (बोली)

६८. इस शब्द की व्युत्पत्ति अरबी रतल से भी हो सकती हैं । केरल में यह शब्द सर्वत्र प्रयुक्त होता है ।

१-ओरु रातल मरच्चीनिककु विल रण्टण । (बोली)

२-रातल ओग्निनु एट्टण निरक्किल् । - क० पु०, पृ० १७ ।

इस शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में दालगदो का कथन है —

‘द एटिमौन इज द अरेबिक ‘रतल’ आर ‘रित्ल’, ह्वि इन इट्स टर्न, इज सपोज्ड टु बी डिराइव्ड फ्राम द ग्रीक ‘लित्र’, इट एपियर्स दैट द वर्ड, इन सम आव् द लैंग्वेज एट लीस्ट, हैज प्रोसीडेड डाइरेक्टली फ्राम पोर्चुगीज’

— इन्फ्लुएंस आव पोर्चुगीज वोकेबुलस०, पृ० २५७ ।

हिंदी और मलयालम में प्रयुक्त पुर्तगाली शब्द

१०५

Lenco
Varandaलैस
वरामदालेसु^{६१}
वरान्त^{७०}

६६. अमात्मक फ्रेंच 'लैस' (las) या अंगरेजी 'लेस' (lace) से भी संभव है। हिंदी में इसका अर्थ कपड़े पर चढ़ाने का सुनहला फीता है, पर मलयालम में यह छोटे तौलिये के लिये प्रयुक्त होता है। उदाहरण—कैलेसु।

७०. इस शब्द के उद्गम के संबंध में अनेक मतभेद हैं। जान् बीम्स, लिटि आदि विद्वानों का मत है कि यह शब्द संस्कृत 'वरंडा' या 'व्रांडा' से व्युत्पन्न है। परंतु डा० गुंडर्ट इससे सहमत नहीं है। डा० गुंडर्ट, विल्किंसन आदि विद्वानों के अनुसार यह पुर्तगाली शब्द है। दालगदो ने इसकी व्युत्पत्ति पर इस प्रकार विचार किया है—

“द ओरिजिन आव् द वर्ड वरांडा आर वेरांडा इज ए सब्जेक्ट आव् ग्रेट कंट्रोवर्सी। जान बीम्स (द्वितीय) तिन्ने ऐंड मेनी अदर्स डिराइव इट फ्राम द संस्कृत वरांडा (व्रांडा) फ्राम द रूट वृ आर वरु कवर, दु सराउंड, दु एन्क्लोज। ऐंड दिस वर्ड इज मार्कड बाइ बौथलिक (डिक्शनरी आव् सेंट पीटर्सबर्ग, १८५५, पृ० ७५) कैपेलर ऐंड मोनियर विलियम्स (फर्स्ट एडि० १८७४) ऐज ए प्योर डिक्शनरी-वर्ड, बिकाज इट इज नाट दु बी फाउंड इन एनी संस्कृत बुक्स नोन टिल नाउ। गुंडर्ट ऐड-मिट्स (मलयालम-इंग्लिश डिक्शनरी, फर्स्ट एडि० : १८७२, पृ० ८३२) द पोर्चुगीज सोर्स। विल्किंसन आल्सो ऐट्रीब्यूट्स इट दु पोर्चुगीज ओरीजिन। रिग डिराइव्स इट फ्राम पोर्चुगीज।”—इन्स्फुएंस आव् पोर्चुगीज बोकेबुल्स०, पृ० ३५६-६०।

१६वीं सदी से इसका प्रयोग मलयालम और अंगरेजी में मिलता है—

१-वरान्तयिल बच्चुतन्ने मतपाठडल् पठिप्पिच्चिरुन्नु। के० क्रि०, पृ० ३।

२-वीट्टिन्टे वारान्तयिल। (बोली)

ग्रीस पिंटो आदि यात्रियों ने अपने विवरण में इसका उल्लेख किया है—

१-“स्माल रेंजेज् आव् पिलर्स दैट सपोर्ट ए पेंट हाउस आर शेड, फार्मिंग ह्याट इज काल्ड, इन द पोर्चुगीज लिंग्वाफ्रेंका 'वेरंडस' ईदर राउंड आर आन पर्टिकुलर साइड्स आव् ए हाउस。”—ग्रीस : ए वायज दु ईस्ट इंडीज (१७५७), पृ० ८४।

२-“ऐंड ही केम दु ज्वाइन अस ह्वेयर बी हेड बीन पुट इन ए 'वेरांडा' ह्वेयर देयर वाज ए लार्ज कैंडिल-स्टिक मेड आव् ब्रास दैट गोव अस लाइट।”—फर्नाओ पिंटो : क्रौनिका दे बिसनागा (१५४०), पृ० १०१।

१४ (७०-१)

Viola	वायलिन	वयलिन ^{७१}
Sorte	शर्त	चार्त्त ^{७१}
Escarlate	सकलात	चकलासु ^{७३}
Salada	सलाद	सलादु ^{७४}
Sofa	सोफा	सोफा ^{७५}

ऊपर विवेचन किये हुए शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो भारतीय होते हुए भी पुर्तगाल के माध्यम से समस्त भारत में और विदेश में प्रचलित हुए हैं। जैसे—क्युरुबिम् (querubim), क्रावो (cravo),

७१. १-वयलिनिल् निन्नु मादकमाय ओरु गानं ओपुकि कोण्टिरुन्नु ।—मा० भू०, १० मार्च १९६२ ।

२-वयलिन नल्लोरु संगीतोपकरण आयु । (बोली)

७२. इस शब्द को अरबी का भी माना जाता है । (दे० सं० हि० स० सा०, पृ० १११) इसमें अर्थ परिवर्तन हुआ है । शर्त का मौलिक अर्थ है, 'ए लाटरी कूपन'—दलगादो, पृ० ३१ । मलयालम में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है । परंतु हिंदी में बाजी कंडिशन आदि अर्थों में चलता है ।

—सं० हि० श० सा०, पृ० १११ ।

१-चिट्टियुटे चान्तु एटुकुक्क दिवसं । (बोली)

२-अवलोरु चान्तिल सेन्नु । (बोली)

७३. हिंदी में कंवल, ओढ़ने की रजाई, मलमली कपड़ा आदि अर्थों में सकलात शब्द प्रचलित है (सं० हि० श० सा०, पृ० १४५) । शायद यह शब्द अरबी से पुर्तगाली में घुसकर भारत की भाषाओं में आगया होगा । डा० गुंडर्ट इसे पुर्तगाली ही मानते हैं (मलयालम-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० ३३७) । मलयालम में इसका अर्थपरिवर्तन हुआ है । मलयालम में ऊनी कपड़ों को चकलासु कहते हैं ।

७४. १-ऊणिनु शेवं कुरच्छु सलाद कूटे कपिच्छु ।—मा० भू० की० १ मार्च, १९६२ ।

२-फलड्डल् कोण्टु सलाद उण्टाक्कानुल्ल विधं ।—मा० भू० वी०, १३ मई, १९६२ ।

७५. १-ईट्टिन्तटि क्रोण्टुण्टाक्किथ सोफ । (बोली)

२-सोफयिल मलन्नु किटन्नु अवन् वाथिक्कुकरायु ।—वि० क०, पृ० १३० ।

बीटल (beetle), कालचाओ (calcao) आदि । क्युरुविम मलयालम का 'कूरुव' नामक एक सुगंधित द्रव्य है जो सिर्फ केरल की सहाद्री की तलहटियों में पैदा होता है । पुर्तगीज व्यापारियों ने इसे देश-विदेशों में पहुँचाया था । इसी तरह क्रावो भी केरल का एक प्रसिद्ध सुगंधित द्रव्य है जिसका मलयालम नाम 'ग्रापु' है । यह इलायची की भाँति सुगंधित होता है । बीटल मलयालम का 'वेट्टिल' है जिसकी गठन 'वेल्-इल' से हुई है, जिसका अर्थ साधारण या केवल सादा पत्ता है । 'कालचाओ' मलयालम 'कालन्चट्ट' का पुर्तगाली रूपांतर है जिसका अर्थ है काल (पैर) में पहनने का चट्ट (कुर्ता या वेश या कपड़ा) । दालगदो साहब ने अपने शोधग्रंथ 'इन्क्लुएंस ऑव् पुर्तगीज बौकैविल्ज इन एशियाटिक लैंग्वेजस्' में इन शब्दों की विस्तृत सूची दी है^६, पर मौलिक मलयालम रूप का विवरण नहीं दिया है ।

इन सभी पुर्तगाली शब्दों ने हिंदी और मलयालम की शब्दावली को बहुत अधिक प्रभावित किया है । इन दोनों भाषाओं में पुर्तगाली शब्द सार्वजनिक और सर्वसाधारण हो गए हैं ।

संकेत सूची

- | | |
|----------------|---|
| १. के० कौ० | केरलकौमुदि (दैनिक पत्रिका) |
| २. सी० वी० रा० | सी० डी० रायन पिल्लू, (पी० के० परमेश्वरन नायर) |
| ३. मौ० च० | मौलविथु चंगतिमार्ग (पी० सी० कुट्टिकुण्णन्) |
| ४. जी० स० | जीवित समरम् (सी० केशवन्) |
| ५. च० का० | चंद्रकांतम् (एस० के० पोडुक्काट्ट) |
| ६. कू० म० | कूम्पटुकुन्न मरणु (पी० सी० कुट्टिकुण्णन्) |
| ७. म० रा० | मलयाल राज्यम् (साप्ताहिक) |
| ८. ति० च० | तिरुवितांकूर चरित्रम् (द्रावकोर सरकार) |
| ९. व० पु० | वर्तमान पुस्तकम् (तोमा कत्तनार्) |
| १०. प० प० कू० | पल्लत्तिन्टे पद्यकृतिकल् (पल्लत्तु रामन्) |
| ११. वि० क० | विण कन्यक (पोडुक्काट्ट) |
| १२. चै० मु० | चैन मुन्नोट्टु (मुंटरशेरि) |
| १३. ओ० कु० | ओटकुषल् (जी० शंकर कुरूप) |
| १४. अ० वा० | अंतर्वाहिनि (पोडुक्काट्ट) |

१०८

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

१५. कृ० शा०	कृषिशालम् (केरल सरकार)
१६. भ्रा०	भ्रान्तालयम् (पी० केशवदेव)
१७. म० ना०	मलयानाटुकलिल् (पोदुक्काट्टु)
१८. इ० प० कृ०	इटप्पल्लि कृतिकल् (इटप्पल्लि)
१९. मा० भू०	मातृभूमि (साप्ताहिक)
१०. रे० वा०	रेड वालंडियर (केशवदेव)
२१. ने० जी० सा०	नेप्पोलियन्टे जीवित सायाहम् (पी० के०)
२२. क्रि० सा० च०	क्रिस्तीय साहित्य चरित्रम् (पी० जे० तोमस्)

पौराणिकी

[इस स्तंभ के अंतर्गत ऐतिहासिक महत्व की अप्रकाशित मूल सामग्री का प्रकाशन किया जायगा । इस अंक में आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम कुछ पत्र सभा संग्रह से प्रस्तुत किए जा रहे हैं । ऐसी सामग्री इस स्तंभ के लिये आमंत्रित है ।]

इन सभी पत्रों में पत्रसंख्या द्विवेदी जी द्वारा अंकित है ।

[१]

श्रीनगर

२४६६

२०-६-०६

प्रियपरिणित जी महोदय

श्री हरिः

प्रणामाः

महीनों से मैं अपना हाल आपको कुछ नहीं लिख सका । तथापि मेरा अंतःकरण इस भावना में सर्वदा लगा रहा था । कई कारणों से पत्र लिखने में जो मैंने विलम्ब किया है उसे क्षमा कीजियेगा ।

जब मैं मुझरे में था और अपने फोड़े होने की बात लिखी थी उसके थोड़े ही दिन बाद मैं बीमार हुआ । बुखार ने हैरान कर डाला । अब तक भी बखूबी ताकत नहीं हुई है परंतु ज्वर अब नहीं होता ।

आनन्दमठ की प्राप्ति से आपने जो श्रीमान को धन्यवाद सूचक पत्र भेजा था, उससे आपका कुशल समाचार पाकर मेरे मन की चिंता मिट गयी और इच्छा हुई कि आप को अपनी दुरवस्था का समाचार लिख भेजूं परंतु अशुभवृत्तांत से किसी सज्जन के हृदय में कष्ट पहुंचाना उचित न समझ पत्र लिखने की ओर मेरी प्रवृत्ति न हुई । जिस समय मैं ज्वर से नितांत पीड़ित था उसी समय मेरी माँ श्री वैद्यनाथ जी जाने के लिये मुंगेर तक आयीं । उनकी इच्छा थी कि मुझे अपने साथ वहाँ तक ले चलें पर मैं किसी प्रकार जाने लायक न था । वह मुझे उस अवस्था में देख अत्यंत आर्त्त हुई और मुझे साथ न लेजाकर जिनके साथ मुंगेर तक आयी थीं उन्हीं को साथ ले श्री वैद्यनाथ गयीं और मुंगेर होकर ही लौटीं । तब तक मैं कुछ अच्छा हो चला था । मुझसे भेट कर

पत्र सौ कपाज पर लिखा गया है ।

वह घर गयी। परंतु इस अभ्यंतर में घर पर की हालत ही कुछ और हो गयी। बाढ़ के पानी से समूचा गाँव जलमग्न हो गया। समस्तीपुर से वाजितपुर तक बराबर नाव की सवारी से मेरी माँ किसी किसी प्रकार घर पर पहुँची। घर को चारों ओर से पानी घेरे हुआ था। आँगन में दरवाजे होकर पानी प्रवेश कर मिट्टी की दिवाल को ढाह गिराने लगा। देखते देखते बने बनाये मकान सब पानी में मिल गये। भदई, आगहनी बिलकुल साफ हो गई, दस कोस में कहीं एक छटाँक फसिल होने की आशा नहीं है। अन्न बिना लोग भूखों मर रहे हैं। रहने के लिये घर नहीं, खाने को अन्न नहीं, पहनने को कपड़ा नहीं, इससे बढ़कर अब और कष्ट गृहस्थों के लिये हुई है क्या ! गाँव के गाँव इसी दुर्दशा में समय बिता रहे हैं। प्यासे को ओस चटाकर तृप्त करने की भाँति गवर्नमेंट से कहीं कहीं भूखों को थोड़ा सा अन्न मिलने का बन्दोबस्त हो रहा है। गाँव प्रति दो एक धनी हैं भी तो वे कहाँ तक किसकी रक्षा कर सकते हैं। जिसकी रक्षा जगदीश्वर से हो नहीं सकती उसकी रक्षा मनुष्य की सामर्थ्य नहीं जो कर सके। कहाँ तक लिखूँ दरभङ्ग और मुजफ्फरपुर जिले के अधिकांश लोग घोर दुर्मिच्छ रूपी काल के आस होने को प्रस्तुत हैं। कदाचित् ईश्वर की दयादृष्टि इन लोगों पर पड़ी तभी उबार है नहीं तो इतने निरवलम्ब निस्सहाय नरनारियों के जीवनरक्षा का कोई उपाय नहीं। अस्तु श्रीमान बड़ा सरकार की अस्वस्थता दिन दिन बढ़ती ही जाती है। यहाँ आकर इनकी तंदुरुस्ती और भी बिगड़ गयी है। शरीर में आवल्य इतना है कि थोड़ा सा परिश्रम बरदास्त नहीं होता। दिमाग धूमता रहता है। अत्यंत खेद का विषय है कि इनके सदृश वीर धीर पुरुष इस समय असह्य शारीरिक पीड़ा का उपभोग कर रहे हैं। इनकी अवस्था देख हमलोगों को अपना दुख भूल जाता है और आँखों में आँसू भर आता है। श्रीमान इसी अस्वास्थ्य के कारण इस वर्ष देवी पूजा भी स्वयं नहीं कर सके। चिकित्सा तो सब प्रकार से हो रही है। फल ईश्वर के हाथ है। इति

कृपाकांक्षी

[२]

जनार्दन भा

मैंने अगष्ट की सरस्वती ध्यानपूर्वक पढ़ी। श्रीमान को भी पढ़ कर सुनाया। हम लोगों के विचार से यह निश्चय

यह किसी पत्र का शेषांश प्रतीत होता है। कारण, इस पर स्थानान्तरण दिनांक आदि कुछ नहीं है।

हुआ कि अगष्ट की सरस्वती में निम्नलिखित लेख बहुत उत्तम उपदेशप्रद और हृदयग्राही लुपे हैं। हम लोग आशा करते हैं कि आप ऐसे ही अत्युत्तम लेख प्रकाशित कर सरस्वती के सहृदय सरस पाठकों के हृदय को रंजित करेंगे।

१—रीवाँ नरेश का चित्र और चरित्र,

२—द्रव्यमाहात्म्य,

३—काल की आत्मकहानी,

४—विकास सिद्धांत,

५—परमात्मा की परिभाषा,

[३]

बाजितपुर

२४६४

२१-१२-०६

श्री हरि:

प्रिय मान्यवर महोदय !

मैंने आपका कृपापत्र विलंब से पाया, इस का कारण यह कि मैं एक सप्ताह के लिये कहीं अन्यत्र गया था।

आपके ज्वर होने की वार्ता से चित्त अत्यंत दुखी हुआ, अब आपकी तबीयत कैसी है सो कृपा करके लिखिये। जी लगा है।

मैथिल ब्राह्मणों को कन्यादान में विशेष व्यय अथवा कष्ट नहीं उठाना पड़ता क्योंकि हम लोगों में वर से रुपया लेकर भी कन्यादान की रीति प्रचलित है अतएव कन्यावाले को उतनी चिंता नहीं रहती।

श्रीमान अभी बराबर मुझे ही रहेंगे। मुझे अपने अनुज्ञापक पत्र द्वारा शीघ्र बुलाते हैं। अगहन की पूर्णिमा तक वहाँ जाने का मेरा इरादा है।

आप यदि कलकत्ते जायें तो अवश्य मुझे होकर लौटेंगे। हम लोग आपके दर्शन की अनुक्षण प्रतीक्षा करते रहेंगे।

श्रीमान् आपकी रची हुई पुस्तक को सहर्ष स्वीकार करेंगे। मैं श्रीमान की चित्तवृत्ति का अनुभव करके ऐसा लिखा है। पुस्तक कितनी बड़ी है, और किस आधार पर लिखा गया है सो लिखेंगे। वन पड़े तो एक प्रति लुप जाने पर मेरे पास भेजने का अनुग्रह कीजियेगा। हमें जहाँ तक स्मरण होता है

पत्र सादे कागज पर लिखा गया है।

११२

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

निम्नलिखित पुस्तकें श्रीमान को समर्पित की गई है। कोई कोई ग्रंथकार अपनी पुस्तक के प्रतिष्ठार्थ श्रीमान से अनुमति बिना लिये कदाचित् श्रीमान के नाम से अर्पण कर दिये हों संभव है। परंतु आप कृपा करके उन चुद्र पुस्तकों के नाम लिख भेजिये तो मैं उसके विषय में फिर आपको लिखूंगा।
इति

आपका कृपाकांक्षी
जनार्दन भा

अथच —

उत्तर भेजने में अधिक विलंब हुआ सो क्षमा कीजियेगा।

[४]

२४६२

श्री हरि:

प्रियवर श्री पण्डित जी

प्रणाम।

आपका फैजाबाद से भेजा हुआ कृपापत्र पहुँचा। कुशल समाचार पाकर चित्त प्रसन्न हुआ। मुँगेर के पते से आपका प्रथम पत्र भी जो मेरे नाम से भेजा गया था हस्तगत हुआ।

श्रीमान को छः सात दिन से बुकार होता है। कलकत्ते जाने को दिन आज ही का नियत था पर इस दिन में अब कैसे जा सकेंगे। यदि ज्वर निवृत्त हो जायगा तो २५ दिसंबर तक वहाँ जाने का निश्चय है। कलकत्ते कदाचित् नहीं जा सकेंगे तो बराबर अभी यहीं रहने का विचार है।

काशी से एक प्रसिद्ध वैद्य कविराज धर्मदास बुलाए गए हैं। तीन महीनों में ये श्रीमान को आरोग्य कर देने की आशा दे रहे हैं। आज से इनकी चिकित्सा शुरू होगी। ईश्वर करे कि इनकी दवा से श्रीमान् आरोग्य प्राप्त कर बलिष्ठ हों।

आपकी स्वाधीनता हिंदीग्रन्थमाला में लुप रही है। श्रीमान कुछ अच्छे हो जाने पर उसे सुनेंगे। मैं पढ़ रहा हूँ। बहुत उत्तम अनुवाद हुआ है। आप श्रीमान को समर्पण करने का जो विचार रखते हैं वह श्रीमान् को मैंने लक्षित कर दिया है। वे खुशी से समर्पण स्वीकर करेंगे। इति

Golkothi
Monghyr
१६-१२-१९०६

पत्र राजमुद्रांकित कागज पर लिखित है।

भवदीय कृपाकांक्षी
जनार्दन भा

पौराणिकी

११३

[५]

गोलकोठी मुङ्गेर

२४८६

२६-३-०७

प्रिय परिणित जी महोदय !

लसतुमत्प्रणतिर्भवदन्तिके ।

आपका भेजा दूसरा कृपाकार्ड भी मैंने पाया । आपने सविस्तार समाचार शीघ्र सूचित करने को लिखा था जिसे मैं किसी कारणवश शीघ्र न लिख अब लिखता हूँ । स्वाधीनता का समर्पण श्रीमान को अङ्गीकार है यह तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ । किंतु इस विषय में कुछ आपसे मैं पूछना चाहता हूँ जिसका स्पष्ट उत्तर दे आप कृतार्थ करेंगे ।

(१) किस अभिप्राय से आप श्रीमान के नाम स्वाधीनता समर्पण करना चाहते हैं ।

(२) श्रीमान ग्रंथसमर्पण के पुरस्कार में आपको द्रव्य द्वारा सत्कृत करना आवश्यक समझते हैं आप इसमें सम्मत हैं वा नहीं ?

(३) ग्रंथरचना में आपने परिश्रम विशेष रूप से किया है जिसके उपहार में आप विद्वानों से प्रशंसा के अतिरिक्त और क्या पा सकते हैं । परंतु आपका उचित सत्कार भी श्रीमानों का कर्तव्य ही है अतः आपका सत्कार करना श्रीमान राजा साहब अपना कर्त्तव्य समझते हैं और ग्रंथ समर्पण के बदले कितने द्रव्य पाने से आप अपनी मानहानि वा अप्रतिष्ठा न समझेंगे यह श्रीमान बूझना चाहते हैं ।

श्रीमान अपनी अवस्था के अनुसार आप के सम्मान करने को प्रस्तुत हैं किंतु इस विषय में आपका आशय वे जानना आवश्यक समझते हैं ।

(५) आप श्रीमान की वर्तमानकालिक अवस्था से प्रायः अपरिचित न होंगे ।

एतदतिरिक्त श्रीमान आपसे कुछ काम लेना चाहते हैं और कुछ कष्ट देना चाहते हैं वह यह कि श्रीमान ने "राजा रानी" का अनुवाद हिंदी भाषा में किया है । उसका संशोधन

१५ (७०-१)

११४

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

आप के द्वारा हो यह उनका इरादा है। इसमें जो आपको परिश्रम पड़ेगा उसका पारितोषिक भी आपको श्रीमान की ओर से अवश्य भेजा जायगा। द्रव्य अथवा कोई वस्तु जो आप चाहेंगे। संशोधन का विशेष तात्पर्य यह है कि “राजारानी” के अनुवाद में ग्रामीण की भाषा श्रीमान ने वैसवाड़े की रखी है परंतु स्वयं उसमें विज्ञान होने के कारण भाषा जैसी होनी चाहिये नहीं हुई है। आप उस प्रान्त के रहनेवाले हैं आप उसे बखूबी सुधार सकते हैं अतः संशोधन का भार श्रीमान आप ही को देना चाहते हैं। इस विषय में भी आप अपनी सम्मति लिखियेगा।

“स्वाधीनता” श्रीमान सुन रहे हैं परंतु इन दिनों श्रीमान का स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया है जिससे किसी काम में तबीयत नहीं लगती है।

स्वाधीनता का विषय तो साहब बड़ा ही गंभीर है। पर भाषा की सरलता में तो आपने कमाल मेहनत की है। बोलचाल की भाषा के लिये आदर्श का प्रथमावतरण समझना चाहिये।

मेरी तबीयत भी दो तीन दिन से अच्छी नहीं है। मेरे बहनोई का घर जल गया है। मेरी बहन अपनी संतानों के सहित मेरे घर आना चाहती है। उनको इस समय मँगालेना जरूरी है। इति

आपका कृपाकांक्षी
जनार्दन भा

[६]

श्रीहरि:

२४८८

गोलकोठी मुद्रक

३०-३-०७

श्री परिणत जी महोदय !

प्रणतिरस्तु भवत्सु गुणाब्धयः ।

आप का कृपा पत्र पाया। स्वाधीनता के विषय में आप का अभिप्राय बहुत ठीक है। मैं आपके पत्र का सारांश श्रीमान को कह सुनाया। आपने जो “राजारानी” संशोधन

करना अङ्गीकार किया उससे श्रीमान् को विशेष संतोष हुआ है। उक्त अनुवाद की कौपी आपकी लिखित रीति पर लिखवाकर श्रीमान् आपसे निकट भेजेंगे। और उसके साथ मूल ग्रंथ भी भेज दिया जायगा। स्वाधीनता की छुपाई में कितने रुपये खर्च हुए हैं? कृपा कर मुझे सूचित कीजिये।

श्रीमान् का नाम यदि आप उचित समझें तो “श्रीमान् साहित्यसरोज कविकुलचन्द्र कुमार कमलानन्दसिंह” अथवा “श्रीमान् कुमार कमलानन्दसिंह साहित्यसरोज कविकुलचन्द्र” अथवा निरुपाधि लिखना आप अच्छा समझें तो वैसा ही लिखें यह आपके विचाराधीन है परंतु “श्रीनगर पुर्निया” का उल्लेख नाम के द्योतनार्थ लिखा जाना सम्यक् होगा।

ग्रंथ लिखने में तो साहब आप बड़ी बहादुरी दिखला रहे हैं। आप के करकल्पपल्लव से बराबर विद्वानों के विनोदार्थ तरह तरह की रसमयी सुखप्रद पुस्तकों का अवतरण होता ही रहता है। फिर “सम्पत्तिशास्त्र” की रचना हो रही है वाह बलिहारी है आपकी। अच्छा संपत्तिशास्त्र किसी ग्रंथान्तर का अनुवाद है या स्वकल्पित है? विषय तो उसके नाम से ही भलकते हैं। तथापि आप भी लिखियेगा। मैं अब अच्छा हुआ। घर जाने का इरादा है। देखें कब फुरसत मिलती है। मेरे लिये एक प्रति “गङ्गालहरी” जो आपके द्वारा छपी है भेजने की कृपा कीजियेगा। मौजूद न हो तो उतनी जरूरत नहीं। फिर कभी मँगालूँगा। इति

भवदीय कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

स्वाधीनता के आदि में श्रीमान् का नाम देना यदि आप उचित समझें तो “ब्लौक” भेज दिया जाय पर एक बात यह है कि यह ब्लौक जो आनन्दमठ के लिये बनवाया गया था प्रायः कुछ बिगड़ा हुआ है जिसकी जाँच आप आनन्दमठ में छपी हुई श्रीमान् की प्रतिमूर्ति से कर ले सकते हैं अतः यदि ब्लौक की सुधार वहाँ करके चित्र उतारा जाय तो ठीक है यदि इस ब्लौक की सुधार न हो सके तो आपके लिखने पर श्रीमान् अपना चित्र भेज देंगे। आप दूसरा उत्कठ तैयार

इस पत्र पर द्विवेदी जी ने पेंसिल से अंगरेजी में लिखा है।
३-४-०७ लिखा है। पत्र सादे कागज पर लिखा गया है।

११६

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

करालेंगे और उसी से चित्र उतरवावेंगे। जो आपकी राय हो लिखियेगा। इति

[७]

गोलकोठी मुङ्गेर

२४८७

६-४-०७

श्री हरिः

श्रीगङ्गादेव्यैनमः

प्रिय परिडतजी महाशय !

प्रणाम

आपका उत्तर आया, जिसे पढ़कर श्रीमान् को सुनाया। किसी उद्देश्य से मनुष्य कोई परिश्रम क्यों न करे फल देने वाला वही महापुरुष है जब तक उसकी कृपा न हो कोई कार्य फलवान् नहीं हो सकता। किंतु सच्चे मन से संसार के उपकारार्थ जो श्रम किया जाता है वह कभी निष्फल नहीं होता यह ईश्वर का एक नियम सा है। किसी कवि ने भी कहा है “स्वार्थान् संपादयंतः सतत प्रियतरारम्भयन्तरः”। आप जो इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से देशोपकार के लिये हिंदी की सेवा कर रहे हैं वह कभी विफल होनेवाला नहीं। आम के पेड़ रोपनेवाले फल की अपेक्षा दूसरे से कदापि नहीं रखते, वही पेड़ समय पाकर फलता है और रोपनेवाले को ही नहीं किंतु रसज्ञमात्र को अपने सुस्वादु फल से तृप्त करता है। ठीक तैसे ही आपके निर्मित ग्रन्थ भी समयानुसार आपको यशोरूपी चिरस्थायी मधुर फल से अवश्य तृप्त करेंगे। अस्तु —

स्वाधीनता के पुरस्कारार्थ श्रीमान् आपको पाँच सौ रु० देने की इच्छा मुझसे प्रकट की है। परंतु बात उसमें यह है कि श्रीमान् ने प्रतिवर्ष हिन्दी के सुलेखकों को साहाय्य देने की जो कुछ व्यवस्था नियत कर रखी है वह इस वर्ष के लिये हो चुकी। मेरे कहने का मतलब यह है कि श्रीमान् को आप स्वाधीनता समर्पण इस वर्ष में करेंगे किंतु श्रीमान् इसके सम्मान सूचक द्रव्य आश्विन दसहरे के अवसर पर आपको भेजेंगे। श्रीमान् के यहाँ आश्विन से नूतन वर्ष का आरम्भ माना जाता है और राजकीय कार्य का अनुक्रम भी

पत्र साइ कालाज पर लिखा गया है।

इसी गणना से चलता है। मैं जहाँ तक समझता हूँ आप प्रायः इसमें असम्मत न होंगे।

टाइटेल पेज पर आप श्रीमान् का नाम निरुपाधि भले ही लिख सकते हैं परंतु समर्पण के लेख में श्रीमान् का नाम सोपाधि लिखना उचित होगा अथवा सभा मण्डल इत्यादि से जो श्रीमान् को उपाधि मिली है श्रीमान् के सम्मानार्थ उसका उल्लेख आप किसी ढंग से कर देना उचित समझेंगे। इति

भवदीय
जनार्दन भा

[८]

श्री हरिः

Srinagar Deorhi

२४७०

Dated 27-1-1908

परम प्रिय परिडित जी महोदय !

प्रणति पूर्वक निवेदन है कि आपका कृपामय कार्ड आज प्राप्त हुआ। आपकी अस्वस्थता का हाल पढ़कर चित्त अत्यंत दुखी हुआ। ईश्वर शीघ्र आपको स्वास्थ्य प्रदान करे। अभी आप श्रम को मुलतवी रखें। अधिक परिश्रम करना अवश्य आरोग्य में हानि पहुंचाता है। आप तो स्वयं सर्वज्ञ हैं। इतना जो मैंने निवेदन किया है वह केवल अपने हृदय का आवेग प्रकट किया है।

मैं २४-१ को घर छोड़ शनिवार की रात में यहाँ सकुशल पहुँचा। उसी दिन श्रीमान् भी कलकत्ते से यहाँ आये। कल रात में श्रीमान् की कन्या का पाणिप्रहण हो गया। जिसके लिये बहुत दिनों से श्रीमान् परेशान थे। वह कार्य कुशलपूर्वक संपन्न हो गया। इस शुभ संवाद से आपके चित्त में विशेष हर्ष होगा। दो सप्ताह के अभ्यन्तर में ही श्रीमान् यहाँ से यात्रा कर मुज्जेर होते हुए नवहदा जायेंगे। जहाँ जाने का निश्चय पूर्व ही कर चुके थे।

श्रीमान् इस बार कलकत्ते में पं० उमापतिदत्त जी से मिले और देवनागर पत्र के विषय में विशेष जिज्ञासा की। देवनागर का उद्देश्य उत्तम जानकर (१००) की सहायता तत्काल उन्हें

पत्र श्रीनगर राज सुद्रीकित कागज पर दोनों और लिख गया है।

दी और आगे के लिये भी उसके सहायक बने। वहाँ प्रसंगात् आपकी चर्चा चली। प्रायः आपने कोई नवीन पुस्तक उनके अवलोकनार्थ भेजी है। श्रीमान् उसे देखना चाहते हैं यदि आपको कोई बाधा न हो तो भेजकर इन्हे अनुगृहीत करेंगे। जहाँ तक हो सके, हम लोगों को उचित है कि श्रीमान् की चित्तवृत्ति को इस ओर आकृष्ट करें।

चित्र जो आप भेजेंगे उनमें एक तो मोहिनी को रहने दीजियेगा और दो चित्र आप और भेजने की कृपा करेंगे। और उन चित्रों के उपयुक्त कुछ ऐतिहासिक विषय भी लिख भेजियेगा। मोहिनी कौन है यह मैं नहीं जानता किसकी लड़की है। किस पर इसका प्रेम था इत्यादि बातों का जानना भी जरूरी समझता हूँ। ऐसे तो जहाँ तक हो सकेगा प्रकृति वर्णन किया ही जायगा पर रोचकता के लिये कुछ ऊपर की बात भी मिलाना ठीक होगा। अच्छा कविता किस छंद में बनायी जाय। नियम हिन्दी का वा ब्रजभाषा का यह भी सूचित कीजियेगा। श्रीमान् भी चित्र पर कविता करने का उत्साह दिखलाते हैं।

श्रीमान् के पास अभी तक जनवरी की सरस्वती नहीं आई, इसका क्या कारण है? श्रीमान् आप से पूछने के लिए मुझे आज्ञा दी है और यह भी कहा है कि आप सरस्वती के मैनेजर को इस विषय में जरा मुलायमियत के साथ पूछें कि श्रीमान् के पास अब तक सरस्वती क्यों नहीं भेजी गयी। श्रीमान् जब मूल्य के अतिरिक्त भी सरस्वती का सब प्रकार साहाय्य करने के लिए तैयार रहते हैं तब उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों?

आप अब कैसे हैं? क्या होता है? लिखियेगा मैं भी अभी शरीर से दुर्बल हूँ। पर कुछ दिन में बलवान होने की आशा है। ऐसे तो मैं बराबर जन्म से ही शरीर का दुबला पतला हूँ। कभी कभी कुछ तरक्की हो जाती है। बाबू मुरलीधर यहीं है श्रीमान् कुमार जी को पढ़ाने पर नियत हुए हैं। इति। अपने घर पर का कुशल समाचार भी लिखियेगा।

कृपाकांक्षी
जनार्दन भा

पौराणिकी

११६

[६]

श्रीहरिः

SRINAGAR RAJ PURNEA

२४६६

dated—8-2-1908

लिखा है। पत्र सादे कागज पर लिखा गया है।

इस पत्र द्विवेदी जी ने अंग्रेजी में 'रिक्लाइड प्राम अजमेर'

प्रियवर पण्डित जी महोदय !

प्रणति पूर्वक निवेदन है कि आप का भेजा हुआ दो चित्रों से अलङ्कृत कृपा पत्र पाया आप की अस्वास्थ्यवार्ता ने चित्त को अत्यंत दुखी किया। डाक्टर ने इलाज तो बहुत अच्छी बतलायी है। गाइये, बजाइये, हँसिये, हँसाइये, जिस प्रकार हो दिल को बहलाइये और दिमाग को पुष्ट कीजिये। थोड़े दिनों तक लिखने पढ़ने का काम बिलकुल बन्द कर दीजिये। बुद्धि को विश्राम लेने दीजिये। बड़ी बड़ी चिन्ती किसी दूसरे से लिखवाया कीजिये। कविता वा अन्यान्य लेख लिखने की भावना को अभी मन में न आने दीजिये। और जहाँ तक हो स्वास्थ्यहानिकारक कामों से कुछ दिन अलग रहिये। दिल दिमाग ठीक हो जाने पर फिर धीरे धीरे व्यवसाय प्रारम्भ कर दीजिएगा।

कृष्णविरहिणी राधिका और परशुराम के चित्र पर मैं अपनी बुद्धयनुसार कविता रचकर आपके मनोरंजनार्थ अवश्य भेजूँगा। अहल्या पर भी यदि कुछ हो सकेगा तो लिखूँगा। श्रीमान् शायद गङ्गावतरण और रुक्माङ्गदा पर कविता करने की इच्छा रखते हैं। पर ये काम मुझरे जाने पर सम्पन्न होंगे। कल्ह श्रीमान् के द्वितीय कुमार का कर्णवेध और अक्षरारम्भ था सो सम्पन्न हुआ। इन दिनों यहाँ उत्सव पर उत्सव होने के कारण चित्त प्रकृतिस्थ नहीं होने पाता। जलसे मैं ही दिन रात फट जाती है। माघी पूर्णिमा के दो एक दिन पहिले ही मुझरे जाने का निश्चय श्रीमान् कर चुके हैं। और सब कुशल है।

भवदीय कृपाकांक्षी

जनादन भा

१२०

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

[१०]

श्रीहरिः

GOL KOTHI

Monghyr—1-3-1907

२४६१

प्रिय पण्डित जी महोदय ।

प्रणाम, प्रणाम ।

हाथिपु पर द्विवेदी जी ने अंशजी में लिखा है ७-३-०७
लिखा है । तथा पत्र राजमुद्रांकित कागज पर है ।

आप का कृपाकार्ड मेरे परोक्ष में यहाँ आया था जो यहाँ आने पर मुझे मिला । मैं श्रीमान की बड़ी कन्या के वरान्वेषणार्थ दरभङ्गा के प्रान्त में जहाँ मैथिल श्रोत्रियों की घनी बस्ती है गया था । तीन सप्ताह पर यहाँ आया । कन्यानुरूप वयोरूपगुणसम्पन्न वर मुझे नहीं मिला । अतएव अभी कन्यादान रुक गया । वैशाख में श्रीमान कुमार गङ्गानन्द सिंह का यज्ञोपवीत होनेवाला है । योग्य वर ठीक हो जाने से अब कन्यादान भी वैशाख ही में होने की संभावना है ।

श्रीमान् बड़ा सरकार १७ फेब्रेवरी को कलकत्ते से यहाँ आगये अभी वरावर यहीं रहेंगे । आपकी स्वाधीनता जो हिंदी ग्रंथमाला में छपनी है श्रीमान ने अभी तक नहीं पढ़ी । मैं अब पढ़ कर उन्हें सुनाऊँगा । एक दिन मैंने इसकी चर्चा चलाई थी । श्रीमान ने आज्ञा दी कि “इसे पढ़कर अवश्य मुझे सुनाइये” । अब सुनाना शीघ्र प्रारंभ करूँगा तदनंतर जो उनकी आज्ञा होगी आपको सूचित करूँगा ।

और सब कुशल है अपनी कुशलवार्ता कृपा करके लिखेंगे । इति

भवदीय कृपाकांक्षी

जनार्दन भा

अथच—

प्रार्थनाशतक में यदि कुछ बदलने की इच्छा हो तो उसे अपना ही जान काट छाँट कर प्रकाश कर दीजिए । यदि उसका छपना आप अब अयुक्त समझें तो छोड़ दीजिए ।

पौराणिकी

१२१

[१०]

श्रीहरिः SRINAGAR PURNEA

dated 18-11-1907.

२४७६

मंगलवार

प्रिय पंडित जी महोदय !

संख्या '२३७६' लिखी है ।
पत्र राज सुद्रोक्त कानज पर है तथा उसपर द्विवेदी जी के हाथ की

प्रणति पूर्वक निवेदन है कि आपके भेजे हुए दो पत्र एक साथ मेरे हस्तगत हुए । श्रीमान् का स्वास्थ्य पूर्वापेक्षया कुछ अच्छा होने लगा था परंतु तीन दिन से ज्वर होने के कारण फिर स्वास्थ्य बिगड़ गया । आवल्य तो पहिले से था ही फिर उपवास करने से और भी बढ़ गया है । शरीर में इतनी सामर्थ्य नहीं है जो टहल फिर सकें ज्वर सामयिक है । शीघ्र आराम होने की आशा है । जबतक बाखूबी आरोग्य प्राप्त न होगा तबतक यहीं रहने का इरादा है । आपका आशीर्वादी पत्र श्रीमान् को मैंने पढ़कर सुना दिया । श्रीमान् ने आपके आशीर्वचन को शिरसा धारण कर हृदय से कृतज्ञता प्रकाश की और अपना कुशल समाचार बराबर आपके निकट भेजने की मुझे आज्ञा दी । अभी तक नवंबर की सरस्वती श्रीमान् के पास नहीं पहुँची है । जिस संदेह के निवारण की सूचना आपने दी है, प्रथम तो संदेह का अंकुर होना ही असंभव है कदाचित् इस विषय में श्रीमान् को कुछ खटकेगा तो मैं आपके आज्ञानुसार उन्हें उस पत्र के द्वारा संदेह को निर्मूलतया निवारण कर दूँगा । आप उसके लिये कोई चिन्ता न करें । विद्वान् लोग अपने लेख द्वारा हृद्गत भाव को व्यक्त करते हैं उन्हें किसी पर आक्षेप करने का प्रयोजना थोड़ा ही रहता है तब जो उस विषय के लक्ष्य हैं वे यदि अपने ऊपर उस आक्षेप को ले लेवें तो इसमें लेखक विचारों का कौन दोष है ? और यदि इस प्रकार लोग आक्षेप समझने लगेंगे तो फिर लेख लिखा ही कैसे जायगा । लेख लिखने का अभिप्राय भी तो यही है कि लोग उसके द्वारा उपदेश ग्रहण कर अपने को सुधारें न कि आक्षेप समझ प्रत्युत उसके विरोधी हों । अस्तु ।

आप भी इस समय ज्वर से पीड़ित हैं यह जान मन में

१६ (७०-१)

१२२

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अत्यंत खेद हुआ। ईश्वर आपको शीघ्र आरोग्य प्रदान करें। दो चार दिन तो मेरी तबीयत भी गड़बड़ा गई थी पर अब अच्छा हूँ। अभी तक ज्वर से बचा हुआ हूँ। किंतु यहाँ मलेरिया का ऐसा प्रचंड प्रकोप है कि शायद ही कोई उसकी दया दृष्टि से बचे। कोई घर ऐसा नहीं है जिसमें दो चार ज्वरी न पाए जायें।

और सब कुशल है। अपना कुशल समाचार कृपया लिखते रहेंगे और हाल यथासमय आपको लिखूंगा। अभी श्रीमान् के खास का काम बिलकुल बंद है। इसी से मैं भी मोनावलंब किए बैठा हूँ। कुछ निवेदन करने का साहस नहीं होता है इनका शरीर कुछ अच्छा हो जायगा तब जो सब आवश्यक कार्य है वह पूरा करके ही कोई दूसरा कार्य होगा। इति

भवदीय कृपाकांक्षी
जनादन भा

[११]

श्रीनगर राज
मुंगेर गोलकोठी

२४६०

ता० २५ मई १९०६

प्रियवर महोदय !

पत्र राज सुश्रुत कान्त पर टंकित है। द्विवेदी जी ने श्रीरेजी में 'रिवाइज २०-५-०६' लिखा है।

आपका पत्र पढ़कर मुझे बड़ा शोक हुआ, आपने अपनी इस बीमारी का हाल एक बार पहिले भी लिखा था, परंतु फिर उसका कुछ समाचार नहीं पाने से मुझे अनुभव हो गया था कि आप अब बिलकुल अच्छे हैं, लेकिन अब इस खत को पढ़कर मुझे नेहायत दुःख हुआ है। मेरे खयाल में तो यह रोग सब रोगों से बढ़कर है। आप इसकी दवा जरूर कराइए। यह रोग बहुत पुराना हो गया है, अब उपेक्षा करना ठीक नहीं, और खासकर जब हरिद्वार ऐसे सुंदर स्वास्थ्यकर स्थान में जब आपको कुछ उपकार नहीं हुआ, तब चिकित्सा परमावश्यक है। काशी में अमृतशास्त्री, कलकत्ते में विजयरत्न सेन बड़े नामी कविराज और पीपूषपाणि है, इन लोगों से अथवा कोई नामी हकीमों से जरूर इलाज कराइए। आपके बैठने से

हिंदी साहित्य की बड़ी हानि होगी। अगर दो चार महीनों के लिये कामकाज छोड़ना पड़े तो कुछ हर्ज नहीं। अगर आपका स्वास्थ्य दुरुस्त होगा तो मुझे आशा है कि उन चार महीनों की क्षति आप एक डेढ़ महीने में पूर्ण कर लेंगे। मेरे लायक जो काम हो लिखिए हम आपकी सहायता इसमें अपने साध्यानुसार अवश्य करेंगे जिसमें आपका रोग दूर हो। मैं अपने से समझ रहा हूँ कि इन गत तीन वर्षों में मानसिक और शारीरिक पीड़ा के कारण पढ़ने लिखने से मेरी कितनी हानि हुई। ईश्वर न करे कि देश के उपकारी विद्वान् को कभी कुछ रोग हो अथवा अकाल मृत्यु हो। चाहे वह मेरा दुश्मन भी हो। इसलिये आप अपना उत्साह भंग मत कीजिए। इलाज जरूर कराइए, जरूर रोग दूर होगा। इति

आपका प्रेमी
श्री कमलानंद सिंह

[१२]

श्रीहरि:

श्रीनगर पुर्निया

२४६७

१६-६-०८

श्रीयुक्त परमप्रिय पंडित जी महोदय

लिखा है।

पत्र पर संख्या '२४६७' द्वितीय जी के हाथ की

प्रणतिपूर्वक निवेदन है कि आप का कृपा पत्र मुझे मिला पर मैं यथासमय उत्तर न दे सका सो क्षमा कीजिएगा। आपका कृतज्ञताद्योतक निवेदन श्रीमान् को सुना दिया उन ने प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि '१००' उनका मेरे जिम्मे बाकी है वह उन्हें कुछ दिन से भेज दूँगा अभी फरागत में नहीं हूँ मैं इस विषय में अब और क्या लिखूँ। फिर समय पाकर लिखूँगा।

संपत्तिशास्त्र का समर्पण श्रीमान् भालरापाटनाधिपति ने स्वीकार किया। जानकर चित्त अत्यंत प्रसन्न हुआ इससे उनकी विद्यारसिकता व्यंजित होती है। समर्पण के उपलक्ष्य में उनने क्या लेकर आपका संमान किया सो कृपया लिखिएगा। और स्वाधीनता का स्वस्व आपने अपने हाथ रक्खा है वा हिंदी ग्रंथमाला के प्रबंधकर्त्ता को दे दिया।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

आपका 'वक्तव्य' काशी नागरी प्र० सभा से मँगवा कर श्रीमान् ने तो स्वयं पहिले ही पढ़ लिया, मैं भी अवसर पाकर इधर साद्यंत पढ़ गया। आप ने तो हृदय कर दिया ऐसा मनोरंजक और सत्यघटनावलित लेख पढ़ने से जो आनंद मुझे हुआ उसका यथावत् वर्णन नहीं कर सकता। बस आप ही से हो। कृत कर्म के फलभोग का निदर्शन इससे अधिक और उनके क्या लिये हो सकता है। मैं तो इस वक्तव्य की एक नकल लिखकर अपने पास रख लेना बड़ा ही आवश्यक समझता हूँ। बलके इसका लिखना प्रारंभ कर दिया है।

आप का भेजा हुआ चित्र मैंने घर जाने के समय किसी किताब में रख दिया उस समय लौटा न दिया यह मुझसे बड़ी भूल हुई इस समय ढूँढ़ने से मिलता नहीं। जब मिलेगा अवश्य लौटा दूँगा। हो सकेगा तो किसी चित्र पर कविता रच आप की आज्ञा का पालन करूँगा। यहाँ सबलोग कुशली हैं। मेरे घर पर भी आपके आशीर्वाद से सब कुशलपूर्वक हैं। जून के अखीर में श्रीमान् मुँगेर जाने का इरादा रखते हैं। इति

भवदीय कृपाकांक्षी

जनार्दन भा

[१२]

Srinagar raj

२४६३

Gol Kothi

Monshyr, date—19-12-1908

प्रिय महोदय,

बहुत दिनों से आप का कोई पत्र नहीं मिला है। मालुम होता है आप को इतनी फुरसत नहीं मिलती है कि बिना दरकार के कोई पत्र लिखें। मुझे भी फुरसत नहीं होती है कि साहित्य की ओर पुरा ध्यान दूँ और कुछ लेख अपने हाथ से लिखूँ। रेआसत का काम शामोशाम करके फेर कलम घरने का जी नहीं चाहता। इसी से कितना विषय पर लिखने का इरादा रहने पर भी नहीं लिख सकते। ऐसा कोई लेखक भी नहीं है जो शुद्ध और तेज जो हम कहते जायें लिखता

द्विवेदी जी ने पत्र पर अंगरेजी में 'रिप्लाइड २१-१६-०८' लिखा है।
पत्र सादे कगज पर लिखा गया है।

जाय। पहले भी जनसीदन भा मेरे लिखाए लेखों को लिखकर मेरी सहायता करते थे परंतु आज कितने दिन से न जाने किसी गृहविडंबना से उनका चित्त स्थिर नहीं रहता है और जहाँतक मुझे मालूम होता है उनसे अब मेरा काम नहीं हो सकेगा इसलिये एक लेखक की मुझे बड़ी ही जरूरत है। इसबारे में मेरा एक विज्ञापन भी शीघ्र निकलेगा परंतु यदि आप के जानते कोई व्यक्ति ऐसा हो तो मुझे उसके रखने में बड़ा आनंद होगा। उसमें इतने गुण रहने चाहिये।

१—हम जो लेख लिखाये उसे वह तेजी के साथ साफ और शुद्ध लिखे।

२—उसे अच्छा हिंदी का ज्ञान हो और कुछ संस्कृत भी जानता हो।

३—वह पुस्तक और अकवार तेज और स्पष्ट पढ़ सके।

वेतन उसको १५) मासिक दो आदमी का खाना। दसहरा, होली और जड़वार मिलेगा। अथवा २६) सूखा मिलेगा। उसको रहने के लिये मकान भाड़ा नहीं देना होगा। काम करने का कोई समय निर्दिष्ट नहीं है मुझे जब फुरसत मिलेगी तब ही उससे काम लूंगा। लेकिन उसके खाने पिने और आराम का विचार मैं जरूर रखूंगा।—

आज एक प्रति 'सम्पत्तिशास्त्र' इंडियन प्रेस से मुझे मिली जिसके लिये आपको धन्यवाद देता हूँ। धन्य आप है आप ऐसा विद्वान हमें दृष्टिगोचर नहीं होता है जो हिंदी की ऐसी सेवा तनमन से करता। जितनी प्रशंसा आपकी की जाय सब थोड़ी है। खेद इतना ही है कि इसके गुणगाहक बहुत कम हैं।

और क्या लिखे अपना कुशल लिखिएगा। इति

भवदीय

श्री कमलानंद सिंह

विमर्श

औचित्य विमर्श

शिवकुमार मिश्र

नागरीप्रचारिणी पत्रिका सं० २०२१ वि० के अंक ३ में पृष्ठ ४३० पर राँची विश्वविद्यालय के हिंदी प्रोफेसर डा० रामखेलावन पांडे द्वारा लिखी गई डा० राममूर्ति त्रिपाठी की पुस्तक 'औचित्यविमर्श' की एक 'समीक्षा' प्रकाशित हुई है। उक्त समीक्षा के अंतर्गत डा० पांडे ने औचित्य विमर्श पुस्तक को लेकर अपने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं, वे आश्चर्यजनक हैं और उन पाठकों को निराश करते हैं जो सभा की इस पत्रिका को केवल इसी लिये पढ़ते हैं कि उसके माध्यम से विद्वान् लेखकों द्वारा लिखी गई स्तरीय, विचारपूर्ण तथा गंभीर सामग्री प्राप्त होगी। एक विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफेसर, तथा एक पुराने लेखक द्वारा अपने दायित्व की यह उपेक्षा विलक्षण प्रतीत होती है। विस्तार में न जाकर यहाँ मैं उक्त समीक्षा के अंतर्गत आलोच्य कृति के विषय में उठाई गई कतिपय मुख्य बातों को ही ले रहा हूँ।

समीक्षक के अनुसार पुस्तक की पहली और उल्लेखनीय कमी यह है कि जहाँ लेखक डा० त्रिपाठी ने औचित्य विचार चर्चा के क्रम में औचित्य विषयक अन्य अनेक आधुनिक लेखकों के अभिमत दिए हैं वहाँ पं० बलदेव उपाध्याय का छूटना आश्चर्यजनक है, क्योंकि 'साहित्यशास्त्र' में उन्होंने औचित्य संप्रदाय की चर्चा की है। डा० पांडे की जानकारी के लिये मैं यह सूचित करना चाहता हूँ कि वे पुस्तक के भीतर अपनी दृष्टि दौड़ाएँ। उन्हें दिखाई देगा कि पुस्तक के पृष्ठ १५५ से प्रारंभ होकर पृष्ठ १५६ तक केवल पं० बलदेव उपाध्याय और उनकी साहित्यशास्त्र पुस्तक की ही औचित्य विषयक चर्चा का उल्लेख है।

डा० पांडे के अनुसार पुस्तक की दूसरी कमी यह है कि उसका 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास का अध्ययन मूल ग्रंथों पर आधारित नहीं।' डा० पांडे की जानकारी के लिये निवेदन है कि पुस्तक पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास पर नहीं औचित्य सिद्धांत पर लिखी गई है। उसमें पश्चिमी काव्य शास्त्र के उन प्रमुख विचारकों का ही उल्लेख है जिन्होंने काव्यगत औचित्य पर प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से कुछ कहा है। पता नहीं औचित्य चर्चा वाली किसी कृति से डा० पांडे को यह अपेक्षा क्योंकर हुई, फिर मूल ग्रंथों से डा० पांडे का आशय क्या है, हम इसे भी

पूरी तरह नहीं समझ पाए, कारण औचित्य चर्चा के संदर्भ में डा० त्रिपाठी ने जिन पश्चिमी आचार्यों तथा विद्वानों का उल्लेख किया है। उनमें से अधिकांश के औचित्य संबंधी अभिमत उन्होंने मूल ग्रंथों के आधार पर ही दिए हैं, डा० त्रिपाठी ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं के जानकार नहीं हैं अतः उन्होंने प्लेटो तथा अरस्तू के अभिमतों के लिये उनके ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवादों का सहारा लिया है, लौजिनस के ग्रंथ का तो हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध है, अतः यहाँ उसे आधार बनाया गया है। होरेस पर भी हिंदी में प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध थी अतः उससे सहायता ली गई। यदि डा० पांडे का आशय यह हो कि लेखक को ग्रीक तथा लैटिन के ही मूल ग्रंथ देखने चाहिए थे तब बात और है। कतिपय अन्य प्राचीन पश्चिमी विचारकों के अभिमतों के लिये डा० त्रिपाठी ने गिलवर्ट और कोहने जैसे अधिकारी लेखकों के ग्रंथों को देखा है। वड्सवर्थ, शेली और कालरिज के मंतव्य मूलतः उनकी लिखित 'वैलेड्स', 'डिफेन्स आफ पोएजी' तथा 'बाइग्राफिया लिटरेरिया' कृतियों से लिए गए हैं। सीमित विषय पर लिखी गई उनकी पुस्तक में उनसे संपूर्ण पश्चिमी काव्यशास्त्र के मूल ग्रंथों पर आधुनिक विवेचन की अपेक्षा करना एक रोमानी अतिवाद ही कहा जायगा। डा० पांडे यह बताएँ कि मुख्यतः औचित्य चर्चा को लेकर क्या किसी हिंदी लेखक की अबतक कोई ऐसी कृति प्रकाशित हुई है जिसमें इतने विस्तार से पौराणिक तथा पश्चिमी विद्वानों के विचारों के संदर्भ में इतनी चर्चा हुई हो। औचित्यविषयक शेली, वड्सवर्थ, कालरिज आदि की मान्यताएँ क्या किसी हिंदी ग्रंथ में उपलब्ध हैं? जाहिर है कि यह सारा कार्य पूरी जिम्मेदारी के साथ हिंदी में प्रथम बार डा० त्रिपाठी के माध्यम से ही सामने आ सका है।

समीक्षक के अनुसार 'पुस्तक में ऐतिहासिक अनुक्रम का अभाव' है। डा० पांडे को यह शिकायत भी न करनी पड़ती यदि वे वस्तुतः पुस्तक को पढ़ते। कृति के अंतर्गत भारतीय तथा पश्चिमी विचारकों के जो भी अभिमत दिए गए हैं, वे न केवल ऐतिहासिक क्रम पर आधारित हैं, प्रत्येक प्राचीन विचारक से संबद्ध ऐतिहासिक तिथि तक का कोष्ठकों में उल्लेख किया गया है। 'ऐतिहासिक अनुक्रम' से यदि डा० पांडे का आशय कुछ और हो तो वे उसे स्पष्ट करने की कृपा करें।

समीक्षक के अनुसार कृति के अंतर्गत भारतीय साहित्यशास्त्र को बहिरंग और अंतर्गत के वर्गों में वर्गीकृत करने का प्रयास भी 'सात्विक' नहीं है। तब क्या यह प्रयास राजस या तामस है? 'सात्विक' शब्द का आशय समीक्षक से स्पष्टीकरण चाहिए। रहा बहिरंग और अंतर्गत विभाजन का प्रश्न, भारतीय काव्यशास्त्र के प्रति सामान्य दिलचस्पी रखनेवाला पाठक भी इस वर्गीकरण के प्रति सहज ही आश्वस्त हो सकता है। पता नहीं वस्तुस्थिति के इतना स्पष्ट होने

पर भी डा० पांडे की सात्विक विचारणा को यह कार्य असात्विक कैसे लगा ? स्पष्ट है कि जब अलंकारवादी और रीतिवादी काव्यशरीर को ही नहीं बल्कि उस शरीर पर आश्रित धर्म को काव्य की आत्मा मानते हैं तब उन्हें काव्यात्मवाद के प्रसंग में यदि बहिरंग न कहा जाय तो क्या कहा जाय ? इनकी अपेक्षा शरीर की तह में निहित रस जैसे सूक्ष्म तत्व को आत्मा माननेवाले ध्वनिवादी तथा रसवादी को यदि अंतरंग भूमिका का स्वीकार किया जाता है, तो क्या अडुच्चन है ? इस वर्गीकरण को व्यावहारिक भूमि पर मान लेने में हमारी समझ में तो किसी को आपत्ति न होनी चाहिए । यह कार्य यदि सचमुच असात्विक है तो, भारतीय काव्य चिंतन के संदर्भ में बहुत से अन्य मान्य समीक्षकों ने भी इस असात्विकता की जिम्मेदारी ओढ़ी है । भारतीय काव्यचिंतन के संदर्भ में इस बढ़ी हुई असात्विक वृत्ति पर डा० पांडे कहां कहां द्योम प्रकट करेंगे ।

‘काव्य के परिपार्श्व में समस्त भारतीय काव्यशास्त्र का अध्ययन करना अनिवार्य सा है,’ डा० पांडे की समीक्षा में आया हुआ यह वाक्य कुछ कटा-कटा सा मालूम पड़ता है । हमारी समझ में प्राचीन आचार्यों ने लक्षणग्रंथों की रचना यों ही नहीं की, लक्ष्यग्रंथ उनके मूल में आद्यंत रहे हैं । फिर अनिवार्य सा है, कहने से क्या अर्थ निकलता है ? अर्थात् अध्ययन अनिवार्य है भी और न भी हो तो काम चल सकता है ? शब्द ब्रह्म है और उसके प्रयोग में असावधानी डा० पांडे जैसे गंभीरता प्रेमी विद्वान् से अपेक्षित नहीं । डा० पांडे के अनुसार डा० त्रिपाठी की वृत्ति ‘संग्राहिका’ है । संग्राहिका वृत्ति के लिये भी कम से कम उपलब्ध सारी सामग्री को एकत्र करने, अध्ययन करने, तदुपरांत बारीकी के साथ सार तत्व को पकड़कर उसका संग्रह करने की आवश्यकता पड़ती है । जिस युग में समीक्षक बिना कृति को पढ़े, केवल सूची देखकर ही उस पर फतवे देने के अभ्यासी होते जा रहे हों, यह संग्राहिका वृत्ति ही कितनी मूल्यवान् हो जाती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं । अपनी अत्यंत लघु समीक्षा में डा० पांडे का अंतिम निष्कर्ष है कि यह विवेचन औचित्य की सीमा और व्याप्ति के निर्धारण में ‘अक्षय’ ही रहा है । डा० पांडे के अनुसार तो अक्षय रहा है, परंतु छुप गया है अक्षय के स्थान पर अक्षय । इसे क्या कहा जाय ? कंपोजीटर्स तथा प्रूफरीडर्स की भूल, असावधानी या साहित्यविवेक या फिर जिसे पोरटिक जस्टिस कहते हैं, वह । सही बात कही भले न गई हो, किसी कारण से छुप वही गई है । डा० पांडे यदि दैवी दुर्घटना से लुब्ध हुए हों तो वे अगले अंक में भूल सुधार के लिये संपादक को पत्र लिखना पसंद करेंगे ?

कुल मिलाकर डा० पांडे ने आलोच्य कृति को बिना पढ़े ही उसपर अपने निर्णय दिए हैं जो नितांत भ्रामक हैं । डा० त्रिपाठी की पुस्तक की अद्वितीयता

का आख्यान हम नहीं करते परंतु इस विषय पर जबतक कोई अन्य श्रेष्ठतर पुस्तक सामने नहीं आती तबतक अत्यंत परिश्रम तथा विवेक के साथ लिखी गई अपनी पुस्तक के लिये डा० त्रिपाठी बधाई के पात्र माने जायेंगे। उनके इस परिश्रम तथा विवेक की सराहना तब भी होगी जब उक्त विषय पर अधिक विस्तृत विवेचन की पुस्तकें भी सामने आ जाएँगी। डा० त्रिपाठी के काव्यशास्त्र संबंधी जो थोड़े से ग्रंथ इधर प्रकाशित हुए हैं वे स्पष्टतः सूचित करते हैं कि सही अर्थ में वे विषय के पंडित हैं। परिश्रम तथा ईमानदारी के साथ साहित्यविवेक उनके लेखन का प्रधान गुण है। विवेचन तथा विश्लेषण की गहराई में जाने की न कोई सीमा है और न हो सकती है। उनकी जो भी उपलब्धि है, हिंदी के इधर के आचार्याभासों की तुलना में कहीं अधिक ठोस तथा महत्वपूर्ण है।

मैंने सारी बातें समीक्षक डा० पांडे के लिये कही हैं, व्यक्ति डा० पांडे के लिये कदापि नहीं। व्यक्ति के रूप में वे मेरे आदरणीय बुजुर्ग हैं और रहेंगे।

*

एक प्राचीन गीताकार : रामसखे

गरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

राष्ट्रभाषा हिंदी का अपरिमित भंडार अब भी गाँव गाँव और घर घर में हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में भरा हुआ पड़ा है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य संमेलन प्रयाग के प्रयत्नों द्वारा अवश्य कुछ ग्रंथ प्रकाश में आ गए हैं किंतु शोध करनेवालों के लिये अब भी विशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है विशेषकर मध्यप्रदेश के गाँव गाँव में जहाँ हस्तलिखित ग्रंथों की सचमुच ही अधिकता है।

इन पंक्तियों के लेखक को एक प्राचीन गीताकार 'रामसखे' कृत गीतों का संग्रह दत्तिया (म० प्र०) में प्राप्त हुआ है, उस पांडुलिपि में, ३६वें गीत से १६६वें गीत तक हैं, प्रारंभ और अंत के पृष्ठ अप्राप्य हैं।

'मिश्रबंधु विनोद' के उत्तरालंकृत प्रकरण में कवि रामसखे से संबंधित निम्नलिखित विवरण है—

(८६०) रामसखे ने श्री नृत्य माधव मिलन (६१ पृष्ठ छोटे) दानलीला (४ पृष्ठ), बानी, दोहावली, मंगलसतक, पदावली, रागमाला (७४ पृष्ठ) और पद (६ पृष्ठ) नामक ग्रंथ लिखे हैं, जो छत्रपुर में हैं। इनका कविताकाल जाँच से १८११ जान पड़ा। खोज १६०५ में नृत्य माधव मिलन का रचनाकाल १८०४ लिखा है। ये साधारण श्रेणी के कवि थे। प्र० त्रै० रिपोर्ट में इनके एक और ग्रंथ रास पद्धति का पता चलता है। द्वि० त्रै० रि० में इनके एक अन्य ग्रंथ मंगल लतिका का पता चलता है। च० त्रै० रि० में कवित्त, मंगलाष्टक, राघवेंद्र रहस्य रत्नाकर कवितावली तथा सीतारामचंद्र रहस्य पदावली नामक ग्रंथ और मिले हैं।

उदाहरण —

संभा आवनि पिय की लावनि देखौ भावनि अवध गली चलि ।
 मृगया भेष हरित चरना तन अरु वन कुसुम सजै गुंजै अलि ।
 लिए कर कुही तुरंग कुदावत जुलफैं छूटी पैज हिए बलि ;
 रामसखे यह छवि पीजै अब, नेह मेह कुल लाज आज दलि ।
 खोज से इनके और गीतों व रास पद्धति का पता चला है ।

×

×

×

प्राप्त पांडुलिपि को देखने से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कवि रामसखे को पिंगलशास्त्र के साथ ही साथ राग रागिनी और गायत्री का भरपूर ज्ञान था, उन्होंने अनेकानेक रागों में अपने जो गीत प्रस्तुत किए हैं उनसे उनकी योग्यता का भरपूर ज्ञान हो जाता है। कुछ गीत प्रस्तुत हैं—

राग हम्मीर (आड़ौ तितारौ)

बैठे दोउ सरद में, सरजू-तट, रघुनंदन सिय प्यारी ।
वन प्रमोद, नव सुमन कुंजसित, मंडल मनि छवि कारी ।
हीरनि मैं सित क्रीट चंद्रिका, मौतिन जड़ित काछुनी सारी ।
वज्रत जंत्र सित नगन मढ़े मृदु, नदन तान तस भारी ।
भोदल मिलि सित रची चाँदनी, सेतइ भोग धरे खचिधारी ।
'रामसखे' सित बनी कांति सब, अमृत तसि दुतिहारी ॥३६॥

राग सुमोद (कल्यान औचकतार)

घर मोकौं लागै जंजाल, आँखै लतन लुभानी ।
वन प्रमोद की कुंजगलिन में, देखत छवि सुखखानी ।
कटि पर पीत क्रीट सिर सोहति, जुलफन मति उरुभानी ।
'रामसखे' अब भई बावरी, नेह समुद्र समानी ॥३७॥

राग कम्मोद (औचकतार)

ये री स्याम मेरौ चित चोरौ है,
आली बिन देखे छिनु कल ना परती ।
चितवत ही चुभि रही दगन छवि,
मूरति पल जिय ते ना टरती ।
गई सब लाज कान गुरुजन की,
वार वार ब्रह्म छाती भरती ।
'रामसखे' पिय के सँग फिरिहैं,
अब वन प्रमोद सखि केलि करती ॥३८॥

राग भोपाली (कल्यान एक तार)

मेरौ चित चोरघौरी, कौसल सुत खेटक के मिस आय ।
वन प्रमोद की कुंज गलिन में, सुंदर बदन दिखाय ।
खान-पान घर काम सखीरी, मो कौं कछु न सुहाय ।
'रामसखे' पिय की सोभा अब, नैनन रही समाय ॥३९॥

१३२

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

राग नायकी (कान्हरो चपतार)

आली मेरी आँखिन लाग गयो है;
 सुंदर राजकुमार चितै कछु चेटक डारि दियो है ।
 चल न चकत डग मगति भूमि पग,
 तन मन विवस भयो है ।
 'रामसखे' उर अवधि साँवरौ,
 निस दिन रहत छुयो है ॥ ४० ॥

राग नायकी (कान्हरी चौतार)

प्यारी जनक लली री सोहै,
 आज राजरंगभरी छुबिसैं रचित अति तन ।
 बसन, कसन, चंदन अरु बंदन,
 जातकि मिहदी पान अंजन ;
 मनि मानिक वलया तिल पाटी,
 मोतन सुगंध फूल भूषन ।
 'रामसखे' पिय संग न टरती,
 हित सजि बैठी पोड़स मुदित मन ॥ ४१ ॥

राग नायकी (कान्हरो तार मूल कवित्त)

सरद निसा है स्वेत, सुंदर सुमन कुंज ,
 सरजू पुलिन सिया राम मन भाई है ;
 मुकता मुकुट हीर, हार रघुवीर जू के,
 चंद्रमा मरीचै बीचि, बीचि छुबि छाई है ।
 घुँघरू घुमंड, घोर, घूमनि मलिदन की,
 नाचि गीत गति एक, जंत्र जनु जाई है;
 सखिन समेत नैन जल जन सौ सीता जू,
 पूजे 'रामसखे' स्याम वर सुखदाई है ॥ ४२ ॥

राग वागेशुरी (कान्हरो तार मूल)

मानि लै री मानि, मेरी कह्यौ प्यारी ।
 छोड़ि मानि मुख बोलि, खोल मन, निज कुल की उजियारी ।
 सजि भूषन अंगन, अंजन दग, ओड़ि कसमल सारी ।
 'रामसखे' पिय सुन बिनती यह, मिलि अवे जनक दुलारी ॥ ४३ ॥

राग बागेशुरी (कान्हारौ आड़ौ तितारौ)

हो सखि आवौ चलयौ री, स्याम सुंदर देखोरी हँसत हँसत ।
 बनि कै छबीलौ नट क्रीड़ा हित सोमवट सरजू के तटतट ।
 पीतांबर फँट कटि कसत कसत ।
 बाँधै सिर चीरा लाल, जुल्फैं छोड़ौ रसाल,
 नैन हू कौ मद घालैं, पहिरैं उर मोती हार लसत लसत ।
 'रामसखे' मन मोहै पान खात अति
 सोहै गावति सखन मिलि, सबके दृगन मग बसत बसत ॥४४॥

राग बागेशुरी (कान्हारौ बड़ौ तार)

बनि ठनि ठाँड़ौ ठाँड़ौ नागर, नट सो मश्र वन वट छाँही ।
 गावति हँसि हँसि तान सखनि मिलि लखन कंध धरि बाँहीं ।
 क्रीट मुकुट काछुनि कटि काछै, नूपुर पगन सुहाहीं ।
 'रामसखे' या रूप मिलन कौ, मौ अंग अंग ललचाहीं ॥४५॥

राग बागेशुरी (कान्हारौ आड़ौ तितारौ)

वीर मैं कैसे धीर धरौं ।
 बिन भेंटे रघुनाथ गात मृदु, पल पल कलप भरौं ।
 कठिन पिनाक कंज करापिय के, जिय अति सोच करौं ।
 'राम सखे' आवत अव यह मन हठि प्रभु पगन परौं ॥४६॥

राग दरवारी (कान्हारौ चौतारौ)

अवधपुरी आज देखौ सखी री, दीप - दान मैं सुहाई ।
 कोटि कोटि रवि ससि दुति निंदति, सोभा वरन न जाई ॥
 खेलत जुआ सकल सखियन मिलि, धरि हरि वपु समुदाई ।
 'रामसखे' लखि यह कौतूहल, रति पति जिय ललचाई ॥४७॥

शोधशास्त्री, यदि 'रामसखे' के संपूर्ण प्राप्त साहित्य पर भरपूर प्रकाश डालें तो अत्युत्तम हो । प्राप्त पांडुलिपि में राग दरवारी, राग सुहानौ, राग मृदु-रेखा, राग छेमनाट, राग हेमनाट, राग स्यामनाट, राग कम्मोद, राग छायानाट, राग काफी, राग हिंडोल, राग बसंत आदि अनेकानेक रागों पर गीत कहे गए हैं ।

अपनी राष्ट्रीय निधि को जो हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में यत्र तत्र सर्वत्र बिखरी हुई पड़ी है, प्रकाश में लाने की नितांत आवश्यकता है ।

*

चयन

भक्ति एवं काव्य रस के मत एवं आलोचना

योगेंद्रप्रताप सिंह

[हिंदी अनुशीलन, वर्ष १८, अंक १-२, १९६५ ई० में
प्रकाशित निबंध का सारांश]

भारती रस सिद्धांतों के क्षेत्र में रस के अंगगिसंबंध की चर्चा आचार्य भरत से प्राप्त होती है, यहाँ इस चर्चा का अभिप्राय रस विशेष की महत्ता स्थापित करना रहा है। भरत का शृंगार रस को महत्त्व देना मूलतः इसी दृष्टिकोण का सूचक है। आचार्य भरत के अनुसार रस की आंतरिक संवेदना मन की रति एवं विरतिमूलक मनोवृत्ति पर आधारित है। इस दृष्टिकोण के मार्जन में अग्नि-पुराण ने केवल शृंगार, वीर, रौद्र और वीभत्स रसों को ही माना है। शृंगार एवं वीर रतिमूलक तथा रौद्र और वीभत्स विरतिमूलक भाव हैं। यही चार रस तदनुसार काव्य में अंगीभूत हैं। शेष हास्य, अद्भुत तथा करुण, भयानक क्रमशः इन्हीं से निष्पन्न हैं। शारदातनय ने 'भावप्रकाश' में रसविषयक मानसिक चेतना को क्रमशः चित्त, विकास, विस्तार, विज्ञोम तथा विक्षेप के अंतर्गत रखकर इन्हें आदिकारण माना है। परवर्ती आचार्य इन्हीं मानसिक प्रवृत्तियों को प्रमुखता देते हैं। इससे परे भी अंगगिसंबंध को लेकर संस्कृत में अनेक मतवाद चलते रहे हैं। नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय के शांत रससंबंधी प्रक्षिप्त अर्थ को ही इस चर्चा का श्रेय प्राप्त है। आगे अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में, शंकराचार्य ने सौंदर्य लहरी में, भर्तृहरि ने भर्तृहरि निर्वेद में भवभूति ने उत्तर रामचरित में करुण रस को ही प्रधान अंगी रस माना है। साहित्य दर्पण में नारायण भट्ट के मत में चमत्कार ही रस का मूलतत्त्व है। अतः वैष्णवाचार्यों के पूर्व ही साहित्य में अंगगि संबंध की चर्चा आरंभ हो चुकी थी। मुख्य प्रश्न यही था कि किस रस को विशेष प्रधान माना जाय।

संस्कृत में भक्तिकाव्यों के प्रणयन एवं भक्ति चेतना के विकास के उपरान्त रस के अंगगिसंबंध का मौलिक प्रश्न उठाया गया। कारण, संस्कृत के आचार्य भक्ति को रस मानने के पक्ष में नहीं थे। वे उसे भाव की श्रेणी मानतेमें थे।

भक्त आचार्यों ने इस तथ्य को निर्मूल तथा असंगत सिद्ध करने में बहुमुखी प्रयास किया। रस का अंगगिनिरूपण के पीछे भी यही आग्रह प्रधान है। अपने काव्य की स्वतंत्र व्याख्या के लिये 'भक्तिरस' के स्वतंत्र स्थायित्व की चर्चा संगत ही थी। इस स्वतंत्र व्याख्या के लिये इन आचार्यों को संस्कृत काव्यशास्त्र का आश्रय अपेक्षित नहीं था। उनके मत में संस्कृत काव्य प्रकृत जीवन व्यापारों से संबद्ध है। इसके विपरीत कृष्ण की मधुर लीला अलौकिक एवं ग्राह्य है। इसकी व्याख्या काव्य रस से संभव नहीं। अतः भक्ति रस की विशिष्टता का प्रतिपादन इन आचार्यों ने किया। इस भूमिका के संदर्भ में, प्रस्तुत निबंध में मधुसूदन सरस्वती, रूप गोस्वामी, कवि कर्णपूर गोस्वामी, आचार्य बल्लभ तथा चोपदेव आदि के मतों की आलोचना करते हुए यह माना गया है कि भक्ति रस की अनुभूति अलौकिक नहीं, अलौकिकत्व का आभास ही है।

✽

निर्देश

हिंदी अनुशीलन, वर्ष १८, जनवरी जून १९६५
निर्गुणोपासना और सगुणोपासना में हिंदी और मराठी कवियों का
दृष्टिकोण—न० चि० जोगलेकर ।

कामायनी में भारतीय संस्कृति का स्वरूप — प्रमिला शर्मा ।
चैतन्य संप्रदाय के कवि नाथ भट्ट — नरेश बंसल ।

भाषा, वर्ष ५, अंक २, दिसंबर १९६५
भारतीय भाषाओं में नवीन वैज्ञानिक शब्दावली के विकास में संस्कृत की
महत्ता — क्रांतिकृष्ण 'अपूर्व' ।

'सुश्रुत' का कृतान्न वर्ग — हरिहर प्रसाद गुप्त ।
मलयालय में प्रयुक्त हिंदी शब्द — वेल्लायणि अर्जुनन् ।

जर्नल आव द ओरियंटल इंस्टीट्यूट बडौदा, भाग १५,
संख्या १, सितंबर १९६५

ऐन एक्सपोजीशन आव द आश्विन सूक्त आव द ऋग्वेद मंत्र १-३४--
वी० एस० अग्रवाल । ऋग्वेदीय आश्विन सूक्त की एक व्याख्या ।
क्रिटिकल एवनामिनेशन आव सम रीडिंग्स आव वाणभट्ट'ज कादंबरी—
आर० सी० हाजरा । वाणभट्ट की कादंबरी के वैज्ञानिक पाठों का परीक्षण ।

*

समीक्षा

व्यवधान

पारिवारिक उपन्यास; लेखिका सुश्री शांतिकुमारी वाजपेयी; प्रकाशकस्वर्यः वितरक लोकभारती प्रकाशन, १५-ए० महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद; पृ० ५२६, प्रथम सं०, मूल्य ८) ।

पुरुष और नारी के नैसर्गिक आकर्षण प्रतिकर्षण, घात प्रतिघात पर आधारित यह उपन्यास अपनी वर्णनशैली, घटनाक्रम, उत्कर्ष और पर्यवसान में अत्यंत रोचक और सफल कृति है। नायक जलद संपन्न और सुशिक्षित होते हुए भी वाग्दत्ता नायिका चंदो की चचेरी बड़ी बहन चपला के प्रति आकृष्ट होता है। यद्यपि चंदो उसके प्रति - अपने भावी पति के प्रति - संपूर्ण भाव से अनुरक्त है, तथापि शील और संकोच से युक्त हिंदू कन्या के संस्कार और नवीन अभिभाविका एवं होनेवाली सास मणि के मर्यादित, सुसंस्कृत एवं स्नेहपूर्ण अनुशासन उसे नितांत संयत रखते हैं। दूसरी ओर एम० ए० की छात्रा चपला यौवन की उद्दाम आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की प्रतिमूर्ति है जो अपनी इच्छाओं की वशवर्तिनी होकर जलद को आत्मसमर्पण कर देती है, बल्कि कहना चाहिए, जलद से आत्मसमर्पण करा लेती है। चंदो उनके रात्रिमिलन और सहवास की घटना जान लेती है और फिर उन दोनों को परिणयसूत्र में आवद्ध कराती है; पर दैवदुर्विपाक से चपला कैंसर जैसे असाध्य रोग से ग्रस्त हो जाती है। आपरेशन द्वारा उसे रोग से मुक्ति तो मिल जाती है किंतु वह संतानोत्पत्ति के निमित्त सदैव के लिये अक्षम हो जाती है। जलद अपने पिता का एकलौता चिरंजीवी है। वंशपरंपरा की समाप्ति की आशंका से चपला स्वयं प्रस्ताव करती है कि अब चंदो का विवाह जलद से तुरंत हो जाना चाहिए। मणि को तो जैसे अयाचित निधि मिल जाती है। चारों ओर की लोकलजा और अपनी मातृस्थानीया मणि के आदेश से चंदो जलद से विवाह भी करती है, परंतु हृदयदेश में पूर्वाधिष्ठित देवाधिदेव मुरारी की मूर्ति के स्थान पर स्वामी रूप में जलद की प्रतिष्ठा करने के बलात् प्रयत्न की उसपर ऐसी प्रतिकूल और दुर्दांत प्रतिक्रिया होती है कि विवाहोपरांत उसका तत्काल प्राणांत हो जाता है।

उपन्यास की सशक्तता, चरित्रों के विकासक्रम, घटनावली की स्वाभाविक परिणति और लेखनशैली की प्रवाहपूर्ण प्रांजलता को देखकर यह नहीं भासित

१८ (७०-१)

होता कि यह कृति इस क्षेत्र में लेखिका का प्रथम प्रयास है। लेखिका जो जो साफल्यलाभ हुआ है, वह क्रम आगे भी चालू रहे, इसकी आकांक्षा स्वाभाविक है। पुस्तक की छपाई सफाई उत्कृष्ट है।

—सुधाकर पांडेय

प्रासाद मंडन

सूत्रधार मंडल रचित देवालय निर्माणशास्त्र, हिंदी अनुवाद सहित, अनुवादक और संपादक—पंडित भगवानदास जैन, जयपुर;

प्रकाशक—बी० एस० शर्मा, बी० एस०-सी०, विशारद, मोतीसिंह का रास्ता, जयपुर; पृष्ठसंख्या ३४४+२२८; मूल्य १६)।

विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दि में सं० १४६० से १५२५ तक चित्तौड़ के राणा कुम्भकर्ण (कुंभ) ने अपने राज्य में अनेक प्रकार से भारतीय संस्कृति का संवर्धन किया। उन्होंने ही चित्तौड़ में प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ का निर्माण कराया। उनके राजकीय स्थापतियों में सूत्रधार मंडन भी थे। उन्होंने कई शिल्पग्रंथों की संस्कृत में रचना की जिनमें प्रासादमंडन विशेष प्रसिद्ध है। उसमें उत्तरी भारत में स्थापत्य की नागरशैली पर बननेवाले देवालयों के निर्माणनियमों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। भूमि से शिखर तक मंदिरों के सभी अंगों के आकार और अनुपात इस ग्रंथ में बतलाए गए हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध विद्वान पंडित भगवानदास जैन जिन्होंने प्राचीन वास्तुशास्त्रों का अध्ययन सुप्रसिद्ध मंदिरों का अवलोकन करके किया है ने सन् १९६२ में इस ग्रंथ का गुजराती भाषा में अनुवाद किया था। अब १९६५ में इन्होंने इसका हिंदी अनुवाद प्रकाशित किया है।

मूल संस्कृत पाठ के नीचे श्लोकों का हिंदी अनुवाद सरल भाषा में किया गया है और उसे स्थान स्थान पर टिप्पणियाँ देकर समझाया गया है। मंदिरों के विविध अंगों के आकार और अनुपात रेखाचित्र साथ लगाकर स्पष्ट किए गए हैं। प्रासादमंडन में दिये निर्माणविधियों और नियमों की तुलना अन्य प्रसिद्ध वास्तुशास्त्रों जैसे अपराजित पृच्छ, दीपारण्व और श्रीरण्व से उद्धरण देकर की गई है। भारत के विख्यात प्राचीन मंदिरों के फोटो चित्र भी देकर ग्रंथ को रोचक बना दिया गया है।

संपादक ने अपनी प्रस्तावना में भारतीय मंदिर-निर्माण-कला का विवेचन किया है। ग्रंथ की भूमिका वाराणसी के पुरातत्वविद्या के विद्वान डाक्टर वासुदेव-शरण अग्रवाल ने लिखी है जिसमें भारतीय वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों का संक्षिप्त वर्णन है।

समीक्षा

ग्रंथ में दो परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट संख्या १ में अपराजित-पृष्ठा के सूत्र १५६ में दिए केसरी आदि प्रासाद के २५ भेदों का वर्णन है। परिशिष्ट सं० २ में जैन प्रासादों के विविध भेद दिए गए हैं। अंत में ग्रंथ में प्रयुक्त लगभग ८०० पारिभाषिक शब्दों की सूची अकारादि क्रम से है और उनके अर्थ भी हिंदी में दिए गए हैं। इससे प्रकट होता है कि विद्वान् संपादक ने प्राचीन शिल्पी पारिभाषिक शब्दों को भलीभाँति समझा है। यह सूची प्राचीन वास्तुशास्त्रों का अध्ययन करनेवालों को बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

वास्तव में यह ग्रंथ हिंदी साहित्य में इस विषय की श्रेष्ठ कृति मानी जाने योग्य है।

—ब्रज मोहनलाल

जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि

लेखक—डा० प्रेमसागर जैन; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; पृष्ठ संख्या २४८; मूल्य ६)।

प्रस्तुत ग्रंथ लेखक के शोधनिबंध 'हिंदी के भक्ति काव्य में जैन साहित्यकारों का योगदान' का प्रथम खंड है। इसमें जैनधर्म के भक्तित्व और भक्तिचर्या पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है। भारतीय भक्तिसाधना के अध्ययन की दृष्टि से जैनभक्त कवियों का योगदान महत्वपूर्ण एवम् विवेचनीय है। उनकी भी एक भक्तिपरंपरा रही है और हिंदी के जैन भक्त कवियों पर उसी पूर्वकालीन परंपरा का प्रभाव रहा है इसी का अनुशीलनात्मक अध्ययन ग्रंथ में किया गया है। प्रारंभ में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के प्राक्थन के अनंतर लेखक की विस्तृत भूमिका है जिसमें जैनभक्ति परंपरा और उसके विकासक्रम का निरूपण है। भक्ति एक प्राचीन साधनामार्ग है जिसे सभी स्वीकारते हैं। जैनभक्ति के दृष्टिकोण से प्रस्तुत ग्रंथ के विवेच्य विषय को लेखक ने पाँच खंडों में विभाजित किया है, जिनमें क्रमशः १. जैनभक्ति का स्वरूप; २. जैनभक्ति के अंग; ३. जैनभक्ति के बारह भेद; ४. आराध्य देवियाँ तथा ५. उपास्यदेव विस्तरेण विवेचित हैं। अंत में एक महत्वपूर्ण सहायक ग्रंथसूची और शब्दानुक्रमणी है। पुस्तक में संकलित एवं विवेचित सामग्री उपादेय और ज्ञानवर्द्धक है तथा सभी साहित्यिक भाषा के छात्रों के लिये हितकर है।

अक्का महादेवी के वचन

अनु०—श्री जी० एम० उमापति शास्त्री; प्रकाशक—कर्नाटक प्रांतीय हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़; पृष्ठ संख्या १३८; मूल्य १)५०।

वसवेश्वर के संप्रदाय में दीक्षित कन्नड़ साहित्य की लेखिकाओं में तेजस्विनी और वीर तपस्विनी रुद्रकन्या अर्द्धा महादेवी कन्नड़ साहित्य की मीरावाह हैं। मीरा के गिरधर गोपाल की तरह इन्होंने परशिव को पतिरूप में माना और सर्वत्र उनका दर्शन किया तथा धर्म की क्रांति के लिये दरदर घूमती हुई अपने वचनामृत से लोगों को पुनरुज्जीवित करती रहीं। उन्हीं के चुने हुए ६० वचनों का संग्रह और हिंदी अनुवाद प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। मूल वचन देवनागरी लिपि में है। इससे हिंदी के माध्यम से कन्नड़ भाषा का परिचय पाने में सहायता मिलती है। प्रारंभ में ६८ पृष्ठों की भूमिका है जिसमें कन्नड़ प्रदेश, कन्नड़ भाषा, साहित्य, वीरशैव धर्म, के तत्व और साहित्य, अर्द्धा महादेवी की जीवनी और व्यक्तित्व का संक्षेपण परिचय है। हिंदी भाषाभाषी जिज्ञासुओं के लिये कन्नड़ साहित्य का संक्षेपात्मक यह परिचय उपादेय है। हिंदी भाषा में अर्द्धा महादेवी पर लिखी यह प्रथम कृति है जिससे हिंदी भाषा का भंडार समृद्ध होता है। इस कृति को हिंदी में प्रस्तुत करने के लिये लेखक श्री उमापति शास्त्री का परिश्रम सराहनीय है।

सती पद्मावती (महाकाव्य)

लेखक—राजत हिस्मतसिंह 'साहित्यरंजन'; प्रकाशक—भारतीय भवन, भेंसरोडगढ़, राजस्थान; पृष्ठ संख्या ३३०; मूल्य ५)।

प्रस्तुत महाकाव्य १२ सर्गों में है जिसमें रानी पद्मावती और नागमती का जोहर वर्णित है। यह काव्य जायसी के पद्मावत के आधार पर है अतः कथा वही है पर लेखक ने पद्मावत के हिरामन और सारिका को व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। पद्मावती का जोहर एक ऐतिहासिक तथ्य है और लेखक ने सरल, सरस, ओजमयी भाषा में काव्यानुरूप विविध छंदों का सहयोग लेते हुए इसे पूर्ण किया है। साथ ही चित्तौड़ संबंधी और भी ऐतिहासिक तथ्य काव्यात्मक रूप में संकलित कर दिया है। अंत में परिशिष्ट है जिसमें लेखक ने पूर्वजों की सादर चर्चा की है। अनेक ज्ञातव्य तथ्यों से युक्त होने के कारण शिक्षाप्रद यह महाकाव्य सभी लोगों के लिये समान रूप से उपादेय और पठनीय है।

—विश्वनाथ त्रिपाठी

(३)

सभा के कुछ कोश--

लघुतर हिंदी शब्दसागर—संपा० पं० करुणापति त्रिपाठी । मूल्य ६.००

लघु हिंदी शब्दसागर—संपा० पं० करुणापति त्रिपाठी । मूल्य ११.००

संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर—संपा० श्री रामचंद्र वर्मा । मूल्य १८.००

हिंदी शब्दसागर—संपूर्ण कोश १० खंडों में पूर्ण करने की योजना

है । इसका प्रथम खंड प्रकाशित हो गया है । दूसरा खंड प्रेस में

है । अन्य खंडों का संपादनकार्य समाप्त हो चुका है ।

मूल्य प्रति भाग १८.००

हिंदी विश्वकोश—अंग्रेजी इनसाइक्लोपीडिया के ढंग का यह हिंदी विश्वकोश

१० भागों में प्रकाशित करने की योजना है । इसके ६ भाग प्रकाशित

हो चुके हैं । सातवाँ भाग छप रहा है । अन्य भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित

होने वाले हैं । मूल्य साधारण संस्करण का २५) और विशेष संस्करण

का ३०)

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें--

१. धातु और क्रियापद—ले० पं० करुणापति त्रिपाठी

२. लालचंद्रिका—संपा० पं० सुधाकर पांडेय

३. मानस अनुशीलन—संपा० पं० सुधाकर पांडेय

४. कागद और लुगदी—ले० डॉ० फूलदेव सहाय वर्मा

५. लक्षणा और उसका हिंदी काव्य में प्रसार—ले० डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी

६. हिंदी विश्वकोश खंड ७

७. दादू थाबली—सं० पं० परशुराम चतुर्वेदी

८. मुगल दरबार (अंतिम भाग)—ब्रजरत्नदास

सभा के कुछ नवीन प्रकाशन

हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का संचित विवरण—(दो खंडों में)

सन् १६०० से १६५५ के प्राप्त हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों का संचित परिचय । मूल्य प्रति खंड ३०.००

मतिराम ग्रंथावली—संपा० स्व० कृष्णबिहारी मिश्र एवं डा० प्रजकिशोर मिश्र । यह पुस्तक मतिराम का सर्वोत्तीर्ण अध्ययन प्रस्तुत करती है । ३५ वर्ष पूर्व प्रकाशित पुस्तक का पुनः संपादित एवं परिवर्धित संस्करण । प्रस्तुत पुस्तक में इस शोधयुग के अनुरूप गंभीर और अनुशीलन युक्त श्री कल्याणपति त्रिपाठी की भूमिका भी दी गई है । मूल्य १२.५०

मधुमालती वर्ता—संपा० डा० माता प्रसाद गुप्त ।

हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यों की परंपरा में 'मधुमालती' का प्रेमाख्यान कई लेखकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है, किंतु चतुर्भुज दास की यह रचना उन सबसे लोक व्यवहार-परक है । मूल्य ८.००

खालिकवारी—संपा० डॉ० श्रीराम शर्मा—

अमीर खुसरो कृत खालिकवारी का अद्यतन मौलिक संपादन है । शोध-पूर्ण विवेचनात्मक भूमिका तथा हिंदी शब्दों का भाषा वैज्ञानिक अभिधान भी है । मूल्य २.७५

हिंदी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका—ले० डा० रामनरेश वर्मा । हिंदी सगुण काव्य के औचित्य पर शोधग्रंथ । मूल्य ११.००

निर्गुण साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—ले० डॉ० मोती सिंह । प्रस्तुत शोध ग्रंथ में हिंदी के निर्गुण साहित्य पर पूर्ण विवेचनात्मक भूमिका है । मूल्य ७.५०

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग १३—संपा० डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' । बृहत् इतिहास के इस भाग में सं० १६७५ से १८५५ तक की अवधि में हिंदी समालोचना, निबंध और पत्रकारिता का विकास ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है । मूल्य २५.००

मैंने कहा—ले० श्री लक्ष्मी कान्त झा । मूल्य ५.५०

प्रस्तुत पुस्तक झा जी के वैयक्तिक निबंधों का संकलन है, इसमें लेखक की विद्वत्ता और सरल मनोभावों की बड़ी सुंदर व्यंजना है ।

Compiled
1999-2000

